ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल २०१९

Date of Printing = 05-4-19
प्रकाशन दिनांक= 05-4-19

वर्ष ४८ : अङ्क ५
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : फाल्गुन-चैत्र २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- आसनों के अत्यधिक.... २
- वेदोपदेश ३
- महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज ४
- निरुक्त में आदित्य ७
- मर्यादा पुरुषोत्तम..... १०
- गायत्री मन्त्र.... १३
- न्यूजीलैण्ड की घटना.... १६
- भारत विभाजन..... १९
- इतिहासकार की कलाकारी..... २१
- यह कैसे सूझा..... २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

आसनों के अत्यधिक महत्व से योग का लक्ष्य ही लुप्त हो जाएगा ये श्रद्धास्थल अन्धश्रद्धा-स्थल न बन जाएं

(आचार्य सत्येदव विद्यालंकार)

आर्य समाज के विद्वानों को प्राचीन साहित्य का तर्कसम्मत तथा ऋषि दयानन्द की धारणाओं के अनुकूल रूप उपस्थित करना होगा। ऐसा न हुआ तो पुरानी रूढ़ियाँ दूर न हो सकेंगी। इसी तरह प्राचीन चिन्तन का एक क्षेत्र यज्ञ और योग का भी है।

मैं दूरदर्शन पर योगासन देख रहा था। योगिराज कुछ योगासन और योगमुद्रा का रूप समझा रहे थे, युवा तथा युवती आसन करके दिखा रहे थे। योगिराज ने आसनों द्वारा अनेक शारीरिक रोगों के दूर करने के उपाय समझाए।

आजकल योग एक व्यापक रोग-चिकितसा पद्धति के रूप में विकसित हो रहा है। अंग्रेजी पढ़े लिखे योग को 'योगा' कहते हैं। कभी-कभी शंका होती है कि यदि योग द्वारा रोगों का उपाय सम्भव है तो स्वामी दयानन्द तो परम योगी थे, उनका इलाज डॉ० अली मर्दान खान तथा डॉ० लक्ष्मण दास द्वारा क्यों कराया गया, किसी योगिराज को क्यों न बुला लिया गया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की मृत्यु कैंसर रोग से ऑपरेशन टेबल पर हुई। आनन्द स्वामी जी ने प्रोस्टेट ग्लैंड का आपरेशन करवाया। स्वामी सुधानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी आदि का देहावसान डाक्टरी इलाज के बाद हुआ।

ऋषि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के उपासना प्रकरण में पातंजल योग शास्त्र के उद्धरणों से योग के रूप को स्पष्ट किया है। कहीं भी रोग दूर करने की बात नहीं लिखी। योगासन हठयोग की क्रियाओं के अन्तर्गत हैं। ऋषि दयानन्द पातंजल योग शास्त्र को ही प्रमाण मानते हैं। नाथ पन्थ के हठ योग को नहीं। मैं यह नहीं कहता कि आसनों का लाभ नहीं। केवल इतना कहना है कि आसन एक व्यायाम की विधा है। पर व्यायाम शरीर स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है। पर व्यायाम चिकित्सा शास्त्र नहीं बन सकता। आयुर्वेद एक अलग शास्त्र है। उसका क्षेत्र अलग है। रोगों के सैकड़ों भेद हैं। उनका अध्ययन, शरीर का अध्ययन, उपायों का चयन तथा विशाल औषध भण्डार का ज्ञान, ये सब आयुर्वेद के अंग हैं। इनके गहरे ज्ञान के बिना चिकित्सा संभव ही नहीं। केवल आसनों का अभ्यासी रोगों का इलाज कैसे कर सकता है?

पातंजल योग में तो आसन का स्वरूप केवल 'स्थिर सुखमासनम्' ऐसा है। अर्थात् वह ढंग जिससे ठीक मुद्रा में अधिक देर तक आराम से बैठा जाय। यही उपयोग ऋषि दयानन्द को मान्य है। आसन अष्टांग की एक प्रारम्भिक वस्तु है। उसका इतना महत्व नहीं जितना आजकल बताया जाता है। इस महत्व से योग का लक्ष्य ही लुप्त हो गया। आजकल तो 'योग' वे भी करते हैं जो नाश्ते में आधा दर्जन अण्डे खाते हैं और खाने में मांस और मदिरा से परहेज नहीं करते, ब्रह्मचर्य का जिनसे नजदीक और दूर का कोई रिश्ता नहीं। क्या यही भारतीय परम्परा है? पातंजल योग शास्त्र में योग का अर्थ समाधि है।

युज्-समाधौ-दिवादि गणी।
युजिरयोगे-समाधौ-रूधादि गणी।
युज्-संयमने चुरादिगणी।

पहले ही समाधि पाद में ऋषि ने स्पष्ट किया है- चित्त की पांच वृत्तियाँ हैं। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। (एकाग्र और निरुद्ध) चित्त वृत्ति के होने पर ही योग सम्भव है। अन्य वृत्तियों में नहीं। कहने का अभिप्राय यह है कि वस्तुतः योग का जो क्षेत्र है आजकल उससे दूर की बातें हो रही हैं।

मैं यह नहीं कहता कि योग की क्रियाओं से स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता। मनुस्मृति में छठे अध्याय में लिखा है- **'प्राणयामैर्दहेद्दोषान्।'** तथा **'तथेन्द्रियाणं दह्यन्ते**

(शेष पृष्ठ १८ पर)

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– १. अग्नि (इश्वर) - सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, ज्ञानस्वरूप, सबसे महान, सुखवर्धक अग्निहोत्र आदि का उपदेश करने वालाा है।

२. अग्नि (भौतिक) अग्निहोत्र नामक यज्ञ को प्राप्त कराने वाला, प्रकाश गुण वाला, महान कार्यों का साधक, चलते समय मार्ग का दर्शक है।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। अग्निः = ईश्वरः भौतिकश्वा देवता।
निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।।
अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते।।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थों का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् –वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि।
अग्ने बृहन्तमध्वरे।। यजु० 2।4॥

पदार्थः–(वीतिहोत्रम्) वीतयो विज्ञापिता होत्राख्या यज्ञ येनेश्वरेण। यद्वा वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्तं परमेश्वरं भौतिकं वा। वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु। इत्यस्य रूपम् **(त्वा)** त्वां तं वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(कवे)** सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ, कविं क्रान्तिदर्शनं भौतिकं वा **(द्युमन्तम्)** द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **(सम)** सम्यगर्थे **(इधीमहि)** प्रकाशयेमहि। अत्र बहुलं छन्दसीति श्नमो लुक् **(अग्ने)** ज्ञानस्वरूपेश्वर प्राप्तिहेतुं भौतिकं वा **(बृहन्तम्)** सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं वा **(अध्वरे)** मित्रभावेऽहिंसनीये यज्ञे वा।। अयं मन्त्रः श० ब्रा० १/३/४/६//

सपदार्थान्वयः– हे कवे! सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ! अग्ने! (जगदीश्वर) ज्ञानस्वरूपेश्वर! (वयमध्वरे) मित्रभावे (बृहन्तं) सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं (द्युमन्तं) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (वीतिहोत्रं) वीतयो विज्ञापिता होत्राऽऽख्या यज्ञा येनेश्वरेण तं परमेश्वरं (त्वा)= (त्वां समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि। इत्येकः।।

(वयमध्वरे) अहिंसनीये यज्ञो (वीतिहोत्रं) वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मान्तं भोतिकं (द्युमन्तं) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (बृहन्तँ) बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं (कवे) (कविं) क्रान्तदर्शनं भौतिकं (त्वा) (तम्) (अग्ने) (भौतिकमग्निं) प्राप्तिहेतुं भौतिकं (समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि।। इति द्वितीयः।।

भाषार्थ :– हे (कवे!) सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ! (अग्ने!) ज्ञानस्वरूप-परमेश्वर! हम (अध्वरे) मित्रता से रहने के लिए (बृहन्तम्) सबसे महान् तथा सुखों के बढ़ाने वाले (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों के बतलाने वाले (त्वा) आप परमेश्वर को (समिधीमहि) हृदय में प्रदीप्त करें।। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है।

हम लोग (अध्वरे) हिंसा से रहित यज्ञ में (वीतिहोत्रम्) सुख प्राप्ति की हेतु अग्निहोत्र आदि यज्ञ क्रियाएँ जिससे सिद्ध होती हैं, उस भौतिक अग्नि को (द्युमन्तम्) बहुत कार्यों के साधक (कवे) क्रान्तदर्शी कवि रूप भौतिक (त्वा) उस (अग्ने) प्राप्ति के हेतु अग्नि को (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करें।। यह इस मन्त्र का द्वितीय अर्थ हुआ।

(हे.... अग्ने = जगदीश्वर! वयं (त्वा)= त्वां समिधीमहि)

भावार्थः– अत्र श्लेषालङ्कारः। यावन्ति क्रियासाधनानि क्रियया साध्यानि च वस्तूनि सन्ति, तानि सर्वाणीश्वरेणैव रचयित्वा ध्रियन्ते। मनुष्यैस्तेषां संकाशाद् गुणज्ञान क्रियाभ्यां बहव उपकाराः संग्राह्याः।।

भावार्थ :– इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है। जितने भी क्रिया के साधन तथा क्रिया से साध्य पदार्थ हैं, उन सबको ईश्वर ने ही रच कर धारण किया है। मनुष्य उनसे गुणगान और क्रिया के द्वारा बहुत से उपकारों को ग्रहण करें।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

(धर्मपाल आर्य)

१० अप्रैल, १८७५ को महर्षि दयानन्द ने जिस समय आर्यसमाज की स्थापना मुम्बई में की थी और आर्यसमाज का अभ्युदय हुआ, उस समय हमारा देश राजनैतिक पराधीनता के साथ साथ सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों की दल-दल में फंसा हुआ था। समाज के सूत्रधार,धर्म के ठेकेदार व राजनैतिक दृष्टि से इस राष्ट्र के भाग्यविधाता (अंग्रेजी शासक) अपने-अपने ढंग से हमारी राजनीतिक,सामाजिक और धार्मिक दिशा और दशा का फैसला कर रहे थे। महर्षि ने तात्कालिक परिस्थितियों का अध्ययन किया तो उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि यह राष्ट्र राजनैतिक दृष्टि से अंग्रेजी मानसिकता का दास है, सामाजिक दृष्टि से इस देश पर जातिवाद हावी है तथा धार्मिक दृष्टि से हमारा देश पाखण्डों और आडम्बरों का शिकार है। इस सब के अतिरिक्त हमारी पुरातनी, सनातनी भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पावनी विरासत अवतारवाद के जाल में फंसी हुई थी। राष्ट्र अंग्रेजी शासन के अत्याचारों का शिकार था जबकि स्त्री और शूद्र सामाजिक और धार्मिक विडम्बनाओं के शिकार थे। महर्षि ने सारी स्थितियों/परिस्थितियों कारणों का गहनता और सूक्ष्मता से मनन किया तत्पश्चात समग्र क्रान्ति का शंखनाद किया। महर्षि के इस समग्र शंखनाद से न केवल अंग्रेजी शासन में हड़कम्प मचा, अपितु समाज के ठेकेदारों में भी हाहाकार मच गया। एक ओर ईश्वरभक्त, देशभक्त और धर्म-मर्म के परम ज्ञाता महर्षि दयानन्द थे, तो दूसरी ओर अंग्रेजी शासक, सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के सूत्रधार और ठेकेदार थे। अकेले महर्षि अंग्रेजी शासन और उसके अत्याचारों से, समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाओं और उनके सूत्रधारों से तथा धार्मिक पाखण्ड, अन्धविश्वास और आडम्बरों से जूझ रहे थे। विदेशी शासन के अन्त के लिए वे परमात्मा से सदैव प्रार्थना करते थे। ऋषि ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टमसमुल्लास में स्पष्ट लिखा है-**"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है"**। स्वराज्य प्राप्ति के उनके उद्घोष से विदेशी शासक सदैव विचलित और शंकित रहते थे। यही कारण था कि महर्षि के जनजागरण के अभियान पर अंग्रेजी शासन की पैनी नजर रहती थी लेकिन महर्षि धुन के धनी और दृढ़ स्वातन्त्र्यवीर थे। आपके व्यक्तित्व पर राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की ये पंक्तियाँ पूर्णतः चरितार्थ होती हैं-

लक्ष्मणरेखा के दास तटों तक आकर ही फिर जाते हैं।
वर्जित समुद्र में नाव लिये स्वातन्त्र्यवीर ही जाते हैं।।

सच्चे ईश्वर को जानने के लिए, धर्म के मर्म को जानने के लिए ऋषिवर ने जो पुरुषार्थ किया, वह इतिहास का अमर और अमिट अध्याय है। ऋषि ने समस्त बाधाओं का न केवल वीरता और धीरता के साथ सामना किया, अपितु उन पर विजय भी प्राप्त की। महर्षि के सामने एक तो बाह्य चुनौती थी जिसका स्वरूप राजनीतिक था और दूसरी चुनौतियाँ आन्तरिक थीं जिनका स्वरूप धार्मिक और सामाजिक था।

धर्म और ईश्वर के विषय में महर्षि का जिस-किसी पौराणिक पण्डित से शास्त्रार्थ हुआ, उन सभी को आपने परास्त किया और मजे की बात ये है कि पराजित

पण्डित भी आपसी वार्तालाप में ये स्वीकार करते थे कि संन्यासी कहता तो ठीक है परन्तु इसे स्वीकार करने से हमारी तो जीविका ही मारी जाती है। पापी पेट का सवाल है। यदि यह संन्यासी मूर्तिपूजा का खण्डन न करते तो वर्तमान समय में इनको ब्रह्मा का अवतार मानना भी अनुचित न होता और यदि ये किसी एक का खण्डन करते तो कोई इनके सामने नहीं ठहर सकता था। उपर्युक्त कथन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ऋषिवर के व्यक्तित्व के सामने प्रतिपक्षियों का व्यक्तित्व बिल्कुल बौना था, ऋषिवर के असीमित ज्ञान के समक्ष पौराणिकों का , मौहम्मदियों का, ईसाइयों का, बौद्धों का, जैनियों का, दादूपंथियों का और कबीरपंथियों का ज्ञान अत्यल्प और अत्यन्त सीमित था। ऋषिवर के अगाध वेदज्ञान के समक्ष पुराणों, कुरानों, बाइबिलों, बौद्ध और जैनमत ग्रन्थों का ज्ञान नितान्त फीका, तथ्यहीन और पूर्ण काल्पनिक कहानी-किस्सों का दस्तावेज जैसा था। धर्मिक क्षेत्र में ऋषि ने जो कायाकल्प अर्थात् जो आशातीत परिवर्तन किए उसके लिए आध्यात्मिक जगत युगों-युगों तक उनका कृतज्ञ रहेगा इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। ऋषि के स्वदेशी जनजागरण के निर्णायक अभियान से सर्वाधिक परेशानी अंग्रेजी सत्ता को थी।

महर्षि राजनैतिक दृष्टि से समाज और राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे यही कारण था कि आपने इस देश के माण्डलिक क्षत्रपों को धर्म, सत्य, न्याय और राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए ऋषि ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अथक प्रयास किए जिसकी परिणति १९४७ में राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के रूप में हुई, ऐसा कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि पं० रामप्रसाद बिस्मिल से लेकर सरदार भगतसिंह तक, चन्द्रशेखर आजाद से लेकर सुभाषचन्द्र बोस तक, स्वामी श्रद्धानन्द से लेकर पंजाब केसरी लाला लाजपतराय तक अधिकांश क्रान्तिकारी महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व और राष्ट्रवादी सोच से प्रभावित थे तथा अधिकांश स्वतन्त्रता सेनानी ऋषि को तथा अनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज को अपना आदर्श एवं मार्गदर्शक मानते थे। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का मुख्य लक्ष्य रहा।

राष्ट्र राजनैतिक दृष्टि से अंग्रेजी पराधीनता से मुक्त हो, सामाजिक दृष्टि से राष्ट्र जातिवाद, लिंगाधारित भेदभाव, बालविवाह, शूद्रों के साथ अन्याय जैसी कुप्रथाओं से मुक्त हो तथा धर्म की आड़ में जन्मे अनेक पाखण्ड व आडम्बर पर आश्रित काल्पनिक असंख्य अवैदिक मतमतान्तरों के अभिशाप से मुक्त हो इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऋषिवर ने वेदप्रचार के माध्यम से , शास्त्रार्थों के माध्यम से, वेदव्याख्यानों के द्वारा, राजा-महाराजाओं को उपदेशों के द्वारा तथा अद्भुत यथार्थ वेदभाष्य के द्वारा भागीरथ प्रयास किया। हमारे कई मित्र प्रश्न करते हैं कि आर्यसमाज की स्थापना करने के पीछे ऋषि का उद्देश्य क्या था? मेरा उत्तर होता है- पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति, सामाजिक समरसता की स्थापना तथा वेदानुकूल धर्म तथा ईश्वरभक्ति का प्रचार-प्रसार अनवरत गति से चलता रहे अन्याय, अधर्म, असत्य और असमानता के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष अनवरत चलता रहे, शान्ति, सामंजस्य, परोपकार, सत्यता, मानवता, बन्धुत्व, राष्ट्रभक्ति, पितृभक्ति, ईश्वरभक्ति और परोपकार का भाव जन-जन में ओत-प्रोत हो जाए, राजनीति में पारदर्शिता, धर्म में सत्यता तथा समाज में समरसता लाने के उद्देश्य से महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज के परम धर्म और उद्देश्य को आपने तीसरे और छठे नियम में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में रेखांकित करते हुए लिखा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। आर्यसमाज ने समाज व राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति में

अपना ऐतिहासिक योगदान दिया। चाहे आजादी का स्वतन्त्रता का संगम हो, चाहे हैदराबाद का सत्याग्रह हो, चाहे पंजाब का हिन्दी आन्दोलन हो, चाहे गोरक्षा आन्दोलन हो, चाहे शराबबन्दी आन्दोलन हो और चाहे पाखंडी रामपाल के खिलाफ संघर्ष हो। इस प्रकार के असंख्य संघर्षों व आन्दोलनों में आर्यसमाज ने अपना स्मरणीय योगदान दिया है। आर्यसमाज ने अपने जन्म से लेकर आज तक अनेक आन्तरिक और बाह्य चुनौतियों का सामना किया। आर्यसमाज ने शिक्षा के क्षेत्र में, शुद्धि के क्षेत्र में, वेद प्रचार के क्षेत्र में, स्त्री और शूद्रों को शिक्षा का अथवा विद्याध्ययन का अधिकार दिलाने के कार्यक्षेत्र में नई क्रान्ति का सूत्रपात किया। पाठकगण! कृपया, मेरे अग्रलिखित कथन को गर्वोक्ति या अतिशयोक्ति न समझें, राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक, भौतिक, राजनैतिक , चारित्रिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान में सर्वाधिक योगदान यदि किसी का रहा है एवं है तो वह है महर्षि दयानन्द और उसके द्वारा स्थापित आर्य समाज। यदि ऐसा न होता तो सीताभि पट्टारमैया को कांग्रेस के इतिहास में यह न लिखना पड़ता कि आजादी की लड़ाई में अस्सी प्रतिशत योगदान आर्यसमाज का रहा है। आर्यसमाज ने राष्ट्र रूपी उद्यान को अपने रक्त से सींचा है और अपने जीवन की आहूति देकर उसे बचाया है। आर्यसमाज राष्ट्र की खडगधारी भुजा है, आर्यसमाज भारतीय सांस्कृतिक विरासत का ऐसा सजग प्रहरी है जिसने सांस्कृतिक विरासत को विकृत करने वाले तत्त्वों का डटकर न केवल सामना किया, अपितु असंख्यों वार उन्हें शास्त्रार्थसमर में पराजित भी किया। आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सामाजिक सुधार हेतु चलाए गए समस्त आन्दोलनों व सत्याग्रहों के सूत्रधार व सफल नेतृत्वकर्ता रहे हैं। आर्यसमाज की मुहिम से प्रभावित होकर अमेरिकी लेखक को अपनी पुस्तक 'बियांड द वैली' में लिखना पड़ा-

"मुझे एक अग्नि दिखाई देती है जो सार्वभौम है अर्थात् वह असीमित प्रेम की अग्नि है जो घृणा को जलाने वाली है और प्रत्यंक वस्तु को जलाकर साफ कर रही है, अमरीका के चुटियल क्षेत्रों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और यूरोप के विस्तृत राज्यों पर मुझे इस पूर्णतया जलने वाली अग्नि की भड़कती हुई चिनगारियाँ दिखाई देती हैं। इस असीमित अग्नि को देखकर जो निश्चित रूप से राज्यों, राजसत्ताओं और संसार भर की बुराइयों को पिघला डालेगी। मैं अत्यन्त आनन्दित होकर एक उत्साह का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ"। एंड्रो डेविस जैक्सन केवल इतना ही लिखकर रुके नहीं। इसके आगे वो लिखते हैं- "जब तक रोग के स्थान पर स्वास्थ्य, मूर्तियों के स्थान पर प्रकृति, पोप के स्थान पर युक्ति, पाप के स्थान पर पुण्य, अविद्या के स्थान पर विज्ञान, घृणा के स्थान पर प्रेम, वैर के स्थान पर ममता, नरक के स्थान पर स्वर्ग, दुःख के स्थान पर सुख, भूत-प्रतों के स्थान पर परमेश्वर और प्रकृति का राज्य न हो जाए तब तक यह अग्नि जलती रहेगी। मैं इस अग्नि की दिशा को बधाई देता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वभौम सुख समृद्धि और आनन्द का युग प्रारम्भ होगा"। हमारे कई मित्र आर्यसमाज के विषय में कई प्रकार के प्रश्न खड़े करते हैं परन्तु मुझे यह लिखने में कोई संकोच नहीं कि यदि भारत का भविष्य संवरेगा तो केवल और केवल आर्यसमाज के द्वारा ही संवरेगा, यदि भारत का नवनिर्माण होगा तो केवल और केवल आर्यसमाज के द्वारा ही होगा, यदि वर्तमान विकृत राजनीति का कायाकल्प होगा तो केवल आर्यसमाज के द्वारा ही होगा। पाप और पाखण्डों का यदि नाश होगा तो वह केवल और केवल आर्यसमाज के द्वारा ही होगा, इसमें कोई शक और सन्देह नहीं होना चाहिए क्योंकि **"आशा बलवती राजन्! शल्यो जेष्यति पाण्डवान्"**। परमात्मा हमें वेदमार्ग पर चलने की शक्ति प्रदान करे।

❑❑

निरुक्त में आदित्य

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- ०६८४५०५८३१०)

वेदों में ३३ देव कुछ स्थलों पर बताए गए हैं, जिनकी व्याख्या शतपथ ब्राह्मण १४/६/१-१०, तदनुसार वृहदारण्यकोपनिषद् ३/६/१-१०, में प्राप्त होती है। उन ३३ देवों के अन्तर्गत १२ आदित्य गिनाए गए हैं, जिन्हें संवत्सर के १२ महीने बताया गया है। सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में महर्षि कहते हैं, "संवत्सर के बारह महीने 'बारह आदित्य' इसलिए हैं कि ये सबकी आयु को लेते जाते हैं", अर्थात् 'अद भक्षणे' धातु से 'आदित्य' शब्द की निष्पत्ति होने से उसको आयु को 'खाने वाला' बताया है। सो ये १२ आदित्य १२ मासों से सम्बद्ध सूर्य के ही नाम हैं। निरुक्त में यास्काचार्य ने एक और भी अर्थ दर्शाया है। उसी का इस लेख में निरूपण कर रही हूँ।

निरुक्त के बारहवें अध्याय में १२ आदित्य गिनाए गए हैं। ये भी सूर्य के ही नाम हैं, परन्तु संवत्सर के कालावयवों से सम्बद्ध न होकर, यहाँ पर अहोरात्र से सम्बद्ध विवरण दिया गया है। इनमें से कुछ की प्रभा के भी नाम गिनाए गए हैं। सभी शब्द वेदमन्त्रों के सन्दर्भ में बताए गए हैं। ये १२ आदित्य हैं- त्वष्टा, सविता, भग, सूर्य पूषन्, विष्णु, विश्वानर, वरुण, केशी, वृषाकपि, यम, अज, एकपात्। इनकी व्याख्या इस प्रकार हैं-

१) **त्वष्टा- रात्रिरादित्यस्यादित्योदयोऽन्तर्धीयते।।** निरुक्तम् १२/११।।- अर्थात् त्वष्टा रात्रि का आदित्य है जिसका उदय होने पर अन्तर्धान हो जाता है। इस प्रकार जब सूर्य हम जहाँ पृथिवी पर स्थित हैं, उसके परली ओर हाता है, तब उसकी संज्ञा 'त्वष्टा' कही गई है। वेदों में 'विवस्वत्' इसका पर्यायवाची शब्द है। इसका निर्वचन इस प्रकार किया गया है- **त्वष्टा तूर्णमश्नुते इति नैरुक्ताः। त्विषेर्वा स्याद्दीप्ति कर्मणः, त्वक्षतेर्वा स्यात् करोतिकर्मणः।।** नि/क्तम् ८/१४।।- 'त्वर + अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च + तृङ्' - शीघ्र फैलने वाला। अथवा 'त्विष दीप्तौ + तृन्' - सम्भवतः पृथिवी के दूसरी ओर दीप्तिमान रहने वाला। अथवा 'त्वक्षु तनूकरणे + तृन्'- यहां अर्थ प्रायः शुद्ध आदि करने से लिया जाता है; सम्भवतः आदित्य के विषय में यह निर्वचन उपयुक्त न हो। रात्रिकाल के अन्धकार को 'सरण्यू' (सृ गतौ + अन्युच् (उणा. ३/८१)) संज्ञा दी गई है।

२. **सविता- तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्ण रश्मिर्भवति।।** निरुक्तम् १२/१२।।- अर्थात् सविता का काल वह है जब रश्मियों के फैलने से अन्तरिक्ष में से अन्धकार नष्ट होने लगता है। यह सूर्योदय के पहले का काल है जब सूर्य तो उदय नहीं हुआ है, परन्तु उसकी रश्मियाँ आकाश में फैलने लगी हैं और धरती अभी भी अन्धकारमय है। यही काल मेधाशक्ति को बढ़ाने वाला और स्वास्थ्य-वर्धक 'ब्राह्म-मुहूर्त' कहा गया है। निर्वचन : **सविता सर्वस्य प्रसविता।। निरुक्तम् १०/३१।।**- 'षु प्रेरणे + तृच्' - सबको उत्पन्न करने वाला, प्रेरित करने वाला। सम्भतवः इसके अर्थ हैं 'दिन को उत्पन्न करने वाला'।

इस काल की प्रभा का नाम 'उषा' है।

३) **भग- तस्य कालः प्रागुत्सर्पणात्।।** निरुक्तम् १२/१४।।- भग का काल सूर्योदय से बिल्कुल पहले का है, जब सूर्य प्रकट होने को जैसे उद्यत हो रहा होता है। इस काल को 'उषा का पुत्र' कहा गया है।

४) **सूर्य- यह उदयकालीन आदित्य होता है। सूर्य सर्तेर्वा, सुवतेर्वा, स्वीर्य्यतेर्वा।।** निरुक्तम् १२/१५।।- 'सूर्य' की निष्पत्ति 'सृ गतौ', 'षू प्रेरणे' व 'सु + ईर गतौ कम्पने च, क्षेपे वा + क्यप्' से की गई है, जिससे इसका अर्थ हुआ 'दृष्ट अन्तरिक्ष में सरकना प्रारम्भ करने वाला', 'जीवों को अपने-अपने कर्मों में प्रेरित करने वाला (सूर्य के उगते ही प्राणी व पेड़-पौधे

अपने-अपने कामों में लग जाते हैं)', व 'भली प्रकार आकाश में गति करने वाला, क्षितिज पर जैसे कम्पन करता हुआ, अथवा रश्मियों को भली प्रकार फेंकना प्रारम्भ करने वाला'।

अवश्य ही इस सूर्य का बहुत महत्व है, क्योंकि कितने ही मन्त्रों में कहा गया है- पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम्- हम उगते हुए सूर्य को देखें। स्वास्थ्य और आंखों की ज्योति के लिए यह लाभकारी है।

इस सूर्य की प्रभा को 'सूर्या' कहा गया है।

५) **पूषन्- अथ यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा भवति।। निरुक्तम् १२/१७।।**- जब सूर्य रश्मियों से सबका पोषण करने लगता है, तब वह 'पूषा' होता है। यह काल सूर्योदय से लेकर मध्याह्न से पूर्व का है, अर्थात् पूर्वाह्नकालीन सूर्य। इस काल की रश्मियाँ सभी प्राणियों का पोषण करती हैं।

६) **विष्णु- अथ यद्विषितोर्भवति, तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा, व्यश्नोतेर्वा।** निरुक्तम् १२/१९।।- फिर जब सूर्य सम्यक् व्याप्त होता है, तब विष्णु होता है। इसकी निष्पत्ति इन धातुओं से यास्क बता रहे हैं- 'विष्लृ व्याप्तौ', 'विश प्रवेशने' व 'वि + अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च' + णु प्रत्यय + किद्भाव (उणादिः ३/३९)। यह मध्याह्नकालीन सूर्य का वर्णन है जब सूर्य रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष और पृथिवी पर पूर्ण रूप से व्याप्त होता है जहां उसकी रश्मियाँ सीधी नहीं पड़ रही होतीं, वहाँ भी वे भली प्रकार प्रवेश कर जाती हैं। (जैसे घरों के अन्दर)। उस काल में रश्मियां इस तरह एकत्रित होती हैं कि छाया भी लुप्त हो जाती है।

७) **विश्वानर-** यह मध्याह्नोत्तरकालीन सूर्य बताया गया है, जिस काल में उसकी किरणें प्रखर ही रहती हैं, और सब प्राणियों और वस्तुओं के अन्दर अभी भी प्रवेश किया हुआ होता है।

८) **वरुण-** इसका काल स्पष्ट नहीं है, परन्तु इसको ऋचाओं ने रश्मिजाल से आच्छादन करने वाला अथवा रोगनिवारक आदित्य बताया है। इसलिए यह वरणीय, सेवन करने येग्य आदित्य है- **वरुणो वृणोतीति सतः- वृञ् वरणे आवरणे वा** + उनन् (उणादि. ३५३)।

९) **केशी- केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान् भवति, काशनाद्वा।।** निरुक्तम् १२/२५।।- केश रश्मियाँ हैं, उनसे युक्त आदित्य केशी है, अथवा प्रकाश करने से उसका यह नाम है (काशृ दीप्तौ + इनि)। इस आदित्य का भी काल स्पष्ट नहीं है।

सम्भवतः क्रमानुसार वरुण व केशी मध्याह्नोत्तर कालीन सूर्य ही हैं।

१०) **वृषाकपि- अथ यद्रश्मिभिरभिप्रकम्पन्नेति तद्वृषाकपिर्भवति वृषाकम्पनः।।** निरुक्तम् १२/२७।।- जो यह रश्मियों से कांपता है, वह वृषाकपि आदित्य होता है। यह सूर्यास्त के समय का आदित्य है, जो क्षितिज पर कांपता-सा दीखता है। 'वृषु सेचने' से यदि यहाँ 'वृषा' की निष्पत्ति की जाए, तो 'रश्मियों की वर्षा' अर्थ निकलता है, जैसा कि गोपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है- **तद्यत् कम्पयमानो रेतो वर्षति तस्माद्वृषाकपिः।।** गोपथ. ६/१२।।- जो वह (अस्तंगत सूर्य) काँपती हुई रश्मियों की वर्षा करता है (अर्थात् कांपता-सा प्रतीत होता है), वह वृषाकपि आदित्य है।

परन्तु 'वृषा' एक और प्रकार से निष्पन्न किया जा सकता है- 'वृश शक्तिबन्धने' धातु से; 'कपि' तो पुनः 'कपि चलने' से ही बनेगा। इससे एक बहुत ही गूढ़ अर्थ कहा जा रहा है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। रश्मि में एक विद्युत् शक्ति और दूसरी चुम्बकीय शक्ति (electro-magnetic fields) एक-साथ बन्धी हुई चलती हैं, जो कि लहर (sinusoidal wave) की तरह कम्पन करती हैं। क्या यहाँ 'वृषकपि' से प्रकाश के इस गुण का वर्णन किया जा रहा है, जो कि सूर्यास्त के समय लाल किरणों द्वारा विशेष रूप से अवगत होता है? यदि हां, तो वृषाकपि आदित्य की प्रभा को वृषाकपायी कहा गया है। वेद-मन्त्र में उसके लाल रंग की तुलना पलाश के लाल फूलों से की गई है।

११) **यम-** निरुक्त में दिए वेदमन्त्र से ज्ञात होता है कि यह अस्त होने के बिल्कुल बाद का सूर्य है, जो रश्मियों को जैसे नियन्त्रित करके अपने में लपेट लेता

है **(देवैः सङ्गच्छते रश्मिभिरादित्यः।।**
निरुक्तम् १२/२८।।)।

१२) **अज एकपात्- अज एकपादजन एकः पादः, एकेन पादेन पातीति वा, एकेन पादेन पिबतीति वा, एकोऽस्य पाद इति वा। 'एकं पादं नोत्खिदति' इत्यपि निगमो भवति।।** निरुक्तम् १२/२९।।- अर्थात् चलने वाला (अज गतिक्षेपणयोः + अच् + वी का अभाव = अज) एक पाद (पाद के अकार का लोप)। छान्दोग्य. ५/१८ में आता है- **तदेच्चतुष्पाद् ब्रह्म। अग्निः पादो, वायुः पाद, आदित्यः पादो, दिशः पादः**- अर्थात् यह ब्रह्माण्ड चार पादों वाला है- अग्नि, वायु, आदित्य और दिशा। सो, आदित्य एक पाद है। यहाँ पर अस्त को प्राप्त आदित्य लक्षित है। अथवा एक पैर (अपनी परिधि) से (में रहकर) रक्षा करता है (पा रक्षणे + क्विप्)। अथवा एक पैर (अपनी परिधि) से पीता (में रहकर) है (पा पाने + क्विप्) अर्थात् पृथिवी से रस ग्रहण करता है। अथवा इसका एक ही पैर (परिधि) है। 'एक पैर नहीं उठाता (अपनी परिधि नहीं छोड़ता)'- इस प्रकार से कहने वाला भी वेदमन्त्र है।

जबकि उपर्युक्त से अस्तंगत सूर्य का अर्थ स्पष्ट नहीं है, तथापि निरुक्त की व्याख्याओं में यह अर्थ पाया जाता है। क्रम से सम्भव है कि यह आदित्य रात्रि के पहले भाग, अर्थात् अहोरात्र का पाद होने से 'एकपात्' कहा गया है। फिर त्वष्टा रात्रि के दूसरे अर्ध के लिए कहा गया हो, जिसकी ध्वनि **'उदयेऽन्तर्धीयते'**- उदय होने पर लुप्त हो जाता है में निहित है। इस प्रकार दिवस के सभी अंशों की अलग-अलग संज्ञा निश्चित हो जायेगी, जिस प्रकार १२ मासों की है।

मेरे अनुसार, 'अज' से 'अजन्मा' भी ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि सूर्य पृथिवी से बहुत काल पहले उत्पन्न होता है और उसके बाद भी बहुत काल तक बना रहता है; और 'एकपात्' से उसके स्थिर रहने का अर्थ है, क्योंकि एक पैर वाला, जैसे वृक्ष, चलता नहीं है। सो, यहाँ यह वैज्ञानिक तथ्य प्रकट किया गया है कि जबकि सूर्य आकाश में गतिशील प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में, पृथिवी के सम्बन्ध में वह स्थिर है, पृथिवी ही गतिशील है।

उपर्युक्त में सर्वत्र अर्थ स्पष्ट नहीं प्राप्त है, तथापि यह स्पष्ट हो जाता है कि आदित्य की विभिन्न स्थितियों को वेद ने बहुत महत्व दिया है। जहाँ मास के रूप में वेद संवत्सर को विभाजित करने का प्रकार समझा रहे हैं, वही अहोरात्र के सम्बन्ध में वे दिवस-भर के आदित्य के विभिन्न गुणों का भी संकेत कर रहे हैं। जहाँ आदित्य की प्रभाव को भी विशेष संज्ञाएं दी गई हैं, वे भी अवश्य ही किसी वैज्ञानिक कारण से होंगी। इनमें से 'उषा' के महत्व को तो हम समझते हैं, परन्तु अन्यों के महत्व से हम अनभिज्ञ हैं।

एक स्रोत से मुझे जान पड़ता है कि ज्योतिष शास्त्र में ये १२ आदित्य भी गिनाए गए हैं- विस्वत्, अर्य्यमा, पूषन्, त्वष्टा, भगः, धाता, विधाता, वरुणः, मित्रः, शक्रः, उरुक्रमः। इनमें से कुछ तो समान हैं, परन्तु कुछ भिन्न हैं। ज्योतिष में इन आदित्यों का क्या महत्व है, यह अन्वेषणीय है।

इस सब से प्रतीत होता है कि आदित्य के विषय में हमारा ज्ञान अब बहुत क्षीण हो चला है और इस विषय में शोध की आवश्यकता है। वेदमन्त्रों की व्याख्याओं में प्रायः उपर्युक्त अर्थ नहीं किए गए हैं- अधिकतर पद परमात्मा अथवा जीवात्मा के अर्थ में ही व्याख्यात हैं, जैसे भग, पूषन्, विष्णु, आदि। इससे मन्त्रों में आदित्य के आधिदैविक अर्थों को भी प्रकाशित करने की आवश्यकता जान पड़ती है। अवश्य ही इससे सूर्य के विषय में अत्यधिक ज्ञानवर्धन होगा।

यहाँ यह भी समझना चाहिए कि महर्षि ने जो अर्थ बताए हैं, वे सदा सम्पूर्ण हों, यह आवश्यक नहीं है। उन्हांने तो स्वयं सर्वदा कहा था कि वेद के अर्थ अनन्त हैं। फिर जो महर्षि के दिए अर्थों के आगे नहीं देख पाते, वह उनकी दूरदृष्टि का अभाव है...

❑❑

"मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का आदर्श एवं प्रेरणादायक जीवन"

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो.- ०९४१२९८५१२१)

आर्यावर्त वा भारतवर्ष में प्राचीन काल से अध्यात्म का प्रभाव रहा है। सृष्टि के आरम्भ में ही ईश्वर ने चार ऋषियों के माध्यम से वेदों का ज्ञान दिया था। हमारे उन ऋषियों व बाद में ऋषि परम्परा ने इस ज्ञान को सुरक्षित रखा जिस कारण आज भी वेद-संहितायें व वेदों का ज्ञान सर्वसाधारण के लिये सुलभ है। यह बात और है कि कोई उससे लाभ उठाता है या नहीं। महाभारत काल के बाद अनेक प्रकार की विकृतियां आ गई थीं और वैदिक धर्मी लोग धर्म के मर्म को भूलकर पाखण्डी और अन्धविश्वासी बन गये। इसका परिणाम भारत में छोटे छोटे राज्य बने, सामाजिक विकृतियाँ उत्पन्न हुईं तथा धर्म में सत्याचार के स्थान पर अज्ञान पर आधारित मिथ्याचार व स्वार्थ आदि की परम्पराओं में वृद्धि हुई। ऐसे समय में वाल्मीकि रामायण में भी प्रक्षेप हुए। रामायण वा राम के सम्बन्ध में अनेक मिथ्या किम्वदन्तियां प्रचलित हुईं और अवतारवाद आदि सम्बन्धी अनेक अविश्वसनीय कथाओं को भी रामायण में जोड़ दिया गया। महात्मा बुद्ध के बाद व कुछ शताब्दी पूर्व भारत में पुराणों की रचना हुई जिसमें ज्ञान व विज्ञान की उपेक्षा कर अनेक अज्ञान से युक्त बातों का प्रचार हुआ। रामायण का कुछ प्रभाव भी भारतीयों में रहा। यवनों की पराधीनता के काल में तुलसीदास जी उत्पन्न हुए जिन्होंने लोक-भाषा अवधि वा हिन्दी में काव्यमय रामचरित मानस की रचना की। इससे पूर्व धर्म व मत सम्बन्धी ग्रन्था संस्कृत भाषा में थे। राम-चरित-मानस के लोक भाषा में होने के कारण इसका जन-जन में प्रचार हुआ। इसका कारण मर्यादा पुरुषोत्तम राम का उज्जवल प्रेरणादायक चरित्र था। यदि कोई मनुष्य राम का जीवन चरित जान ले और उसके अनुसार आचरण करें तो वह मनुष्य जीवन में अनेक प्रकार की सफलताओं को प्राप्त कर सकता है। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने सभी शास्त्रीय एवं इतिहास ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने पुराणों की परीक्षा भी की थी। ऋषि दयानन्द ने पाया कि रामचन्द्र जी का जीवन वैदिक मान्यताओं के आधार पर व्यतीत हुआ था। एक क्षत्रिय राजा व राजकुमार का जीवन जैसा होना चाहिए वैसा ही आदर्श एवं मर्यादा में बन्धा हुआ जीवन रामचन्द्र जी का था। अतः ऋषि दयानन्द ने वेदों को जो ईश्वर प्रदत्त ज्ञान होने से अखिल-धर्म का मूल हैं, उनका प्रचार प्रसार किया और साथ ही वेद की मान्यताओं पर आधारित अपने सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों की रचना भी की। राम के जीवन में हम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श राजा, आदर्श मित्र, आदर्श शत्रु, ईश्वर भक्त, वेदानुयायी, ब्रह्मचर्य के पालक, प्रजा पालक, भक्त वत्सल, आदर्श पति, तपस्वी, धर्म पालक, ऋषि व धर्म के रक्षक आदि अनेक रूपों व गुणों को पाते हैं। यदि हम रामचन्द्र जी के इन गुणों को अपने जीवन में धारण कर लें तो हमारा कल्याण हो सकता है। यही कारण था कि लाखों वर्ष पूर्व उत्पन्न राम व उनके रावण के साथ युद्ध आदि की घटनाओं पर आधारित वाल्मीकि रामायण व राम चरित मानस गन्थों ने देशवासियों के हृदय में अपनी अमिट छाप बनाई। आज भी रामायण व इस पर आधारित अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनका अध्ययन किया जाता है। रामचन्द्र जी के जीवन से वर्तमान समय में भी लोग अपनी घरेलू व राजनीति की समस्याओं के समाधान ढूंढने का प्रयत्न करते हैं। महर्षि दयानन्द ने बाल्मीकि

रामायण को इतिहास का ग्रन्थ स्वीकार कर इसके विश्वसनीय, सृष्टिक्रम के अनुकूल तथा वेदानुकूल भाग का अध्ययन करने का विधान वैदिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में किया है।

आर्यसमाज में अनेक विद्वानों ने रामायण पर कार्य किया और उसका मन्थन कर उसका वेदानुकूल व विश्वसनीय इतिहास सम्बन्धी भाग श्लोकों के हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत किया है। वर्तमान में आर्यसमाज में पं० आर्यमुनि, स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती तथा महात्मा प्रेमभिक्षु कृत बाल्मीकि रामायण पर आधारित ग्रन्थों का विशेष प्रचार है। हमारे पास यह सभी ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथा रामायण पर कुछ अन्य आर्य विद्वानों के अनुवाद व ग्रन्थ उपलब्ध हैं। हमने स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी की बाल्मीकि रामायण को आद्योपान्त पढ़ा है। यह ग्रन्थ पढ़ने योग्य है। इसमें प्रक्षिप्त भाग को हटाकर रामायण को रोचक रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसे पढ़ने से पाठक को रामचन्द्र जी विषयक प्रायः पूर्ण इतिहास का ज्ञान होता है। यह ग्रन्थ यद्यपि एक वृहद ग्रन्थ है परन्तु गीता प्रेस की बाल्मीकि रामायण की तुलना में काफी छोटा है। इसे कुछ ही दिनों में पढ़ा जा सकता है। इसे पढ़ने से रामायण का लगभग पूर्ण ज्ञान हो जाता है जितना ज्ञान किसी मनुष्य के लिए आवश्यक है। हम अनुभव करते हैं कि प्रत्येक परिवार में यह ग्रन्थ होना चाहिये और सबको इसका तन्मयता से पाठ करना चाहिये।

राम चन्द्र जी की शिक्षा-दीक्षा ऋषियों के सान्निध्य में हुई थी जहां वेदाध्ययन सहित उन्हें क्षत्रिय धर्म की शिक्षा भी दी जाती थी। राम व लक्ष्मण ऋषियों के सान्निध्य में सन्ध्या व यज्ञ करते थे तथा अपने कर्त्तव्यों सहित शस्त्र संचालन एवं वेदज्ञान प्राप्त करते थे। रामायण के अनुसार रामचन्द्र जी का स्वरूप व व्यक्तित्व अत्यन्त सुन्दर, स्वस्थ, आकर्षक, प्रभावशाली एवं विद्या व सदाचार से परिपूर्ण था। वह माता-पिता तथा आचार्यों के आज्ञाकारी व सेवक तो थे ही साथ ही अपने भाईयों के प्रति भी उनका व्यवहार वेद व शास्त्रों की मर्यादाओं के अनुसार था। प्रजा भी उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार से प्रभावित व उन पर मुग्ध थी। रामचन्द्र जी ऋषि विश्वामित्र के साथ वन में रहे और उनसे अध्ययन किया। वनों में ऋष्यिों के अनेक आश्रम थे जहाँ ऋषि-मुनि विद्वान्-वानप्रस्थी व संन्यासी वेदानुकूल जीवन व्यतीत करते हुए शोध, अनुसंधान एवं शस्त्र विज्ञान सहित आयुद्ध निर्माण का कार्य किया करते थे। लंका का राजा रावण इन ऋषियों के कार्यों के प्रति आजकाल के आतंकवादियों के स्वभाव वाला था तथा निर्दोष और ईश्वर भक्ति में मग्न ऋषियों व उनके आश्रम में निवास करने वाले विद्यार्थियों पर अत्याचार करता था। बहुत से ऋषि व विद्वान् इस कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त होते थे। अतः रामचन्द्र जी ने ऋषियों को कष्ट देने वाले अनेक राक्षसों का वध किया था। एक राजा व राजकुमार होने के कारण उन्हें दोषी व अपराधी प्रवृत्ति के दुष्ट लोगों को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार था।

रामचन्द्र जी ने गुरु विश्वामित्र जी के साथ राजा जनक की नगरी मिथिलापुरी मे सीता के स्वयंवर में प्रवेश किया था और वहां एक प्राचीन भारी धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हुए उसे तोड़ डाला था। इस धनुष पर अन्य राजा प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सके थे। यह राम की वीरता व पराक्रम का आरम्भ था। सीता से विवाह कर आप अयोध्या आये थे। कुछ दिन बाद आपके राज्याभिषेक का निर्णय आपके पिता दशरथ व मंत्री परिषद ने लिया था। पारिवारिक व देश की परिस्थितियों के कारण आपको अगले ही दिन १४ वर्ष के लिए वन जाना पड़ा। बाल्मीकि रामायण ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है–

'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। न मुखे लक्षितस्तस्य सवल्पोऽप्याकारविभ्रमः।।' इसका अर्थ

है कि **'राज्याभिषेकार्थ बुलाये हुए और वन के लिये विदा किए हुए रामचन्द्र के मुख के आकार में ऋषि बाल्मीकि जी ने कुछ भी अन्तर नहीं देखा।'** कहाँ तो रामचन्द्र जी को राजा बनना था और कहाँ अगले ही दिन उन्हें सभी राजकीय सुख-सुविधाओं का त्याग कर वन जाने को कहा गया। इस पर भी वह इन घटनाओं से किंचित् विचलित हुए बिना पिता की आज्ञा पालन करने के लिए सहर्ष वन जाने के लिये तैयार हो गये। विश्व इतिहास में ऐसी घटना दूसरी नहीं है। आज राजनीति का स्तर कितना गिर गया है वह प्रायः सभी राजनीतिक नेताओं व उनके अनुचरों के दिन प्रतिदिन के बयानों से देखा व जाना जा सकता है। वह देश के हितों की उपेक्षा करने से भी गुरेज नहीं करते। दूसरी ओर राजा बनाने की घोषणा सुनकर भी राम के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव नहीं देखा गया और वन जाने के लिये कहने पर भी उनके मुख पर किसी प्रकार के दुःख या चिन्ता का भाव नहीं था। यह स्थिति एक बहुत उच्च कोटि के योग साधक व ईश्वर भक्त की ही हो सकती है। इससे रामचन्द्र जी के व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है जो कि आदर्श है। इससे शिक्षा लेकर हम भी सुख व दुःख की स्थिति में स्वयं को समभाव वाला बनाकर जीवन को ऊंचा उठा सकते हैं। रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करते हुए आर्य विद्वान् श्री भवानी प्रसाद जी ने लिखा है– **'वस्तुतः दशरथनन्दन राम स्वकुलदीपक, मातृमोदवर्द्धक तथा पितृनिर्देशपालक पुत्र, एकपत्नीव्रतनिरत पति, प्राणप्रियाभार्यासखा, सुहृददुःखविमोचक, मित्र, लोकसंग्राहक, प्रजापलक नरेश, सन्तानवत्सलपिता और संसार मर्यादा-व्यवस्थापक, परोपकारक, पुरुषरत्न का एकत्र एकीकृत सन्निवेश, सूर्यवंश प्रभाकर, कौशल्योल्लासकारक, दशरथानन्दवर्धन, जानकी जीवन, सुग्रीवसुहृद्, अखिलार्यनिषेवितपादपद्म, साकेताधीश्वर, महाराजाधिराज आदि गुणों से युक्त थे।'** यह सभी गुण अन्य कहीं किसी मानव में मिलना दुर्लभ है।

रामायण के सुग्रीव-हनुमान मित्रता, बालीवध, सुग्रीव को राजा बनाना, बाली के पुत्र अंगद को अपने साथ रखना, प्राणपण से ऋषि-मुनियों की रक्षा तथा राक्षसों का नाश करना, रावण को अपने दूतों द्वारा समझाना और सीता को लौटाने का सन्देश देना, रावण के भाई विभीषण को शरण देना और रावण के वध के बाद उन्हीं को लंका का राजा बनाना, १४ वर्ष बाद अयोध्या लौटकर भरत के आग्रह पर राजा बनना और तीनों माताओं को समानरूप से सम्मान देना, एक आदर्श राजा व पिता के रूप में प्रजा का पालन करना रामचन्द्र जी को एक आदर्श मनुष्य व पुरुषोत्तम बनाते हैं। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य भी है। मध्यकालीन अल्पज्ञानी लोगों ने वेदों से अनभिज्ञ होने के कारण उन्हें परमात्मा के समान पूजनीय स्वीकार किया और आज तक भी उनका यश कायम है। करोड़ों लोग उनके जीवन के प्रेरणा लेते आये हैं व अब भी ले रहे हैं। यदि इतिहास में उपलब्ध सभी जन्म लेने वाले महापुरुषों के जीवन पर दृष्टि डालें तो रामचन्द्र जी के जैसा महापुरुष विश्व इतिहास में दूसरा उपलब्ध नहीं होता। आज भी रामचन्द्र जी का जीवन प्रासंगिक एवं प्रेरणादायक है। हमें बाल्मीकि रामायण का अध्ययन करने के साथ रामचन्द्र जी के गुणों को अपने जीवन में धारण करने का प्रयास करना चाहिये। इसी से हमारा जीवन सार्थक होगा। रामनवमी रामचन्द्र जी का जन्म दिवस है। इस दिन हमें उनके जीवन पर किसी वैदिक विद्वान् की कथा व प्रवचन सुनना चाहिये और उससे लाभ उठाना चाहिये। ओ३म् शम्।

❑❑

गायत्री मन्त्र का वैज्ञानिक भाष्य

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक भीनमाल, मो.- ०६४१४१८२१७३)

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात।। (यजु० ३६/३)

भूः। भुवः। स्वः। तत्। सवितुः। वरेण्यम्। भर्गः। देवस्य। धीमहि।। धियः। यः। नः। प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्।।

पदार्थ- (भूः) कर्मविद्याम् (भुवः) उपासनाविद्याम् (स्वः) ज्ञानविद्याम् (तत्) इन्द्रियैरग्राह्यं परोक्षम् (सवितुः) सकलैश्वर्यप्रदस्येश्वरस्य (वरेण्यम्) स्वीकर्त्तव्यम् (भर्गः) सर्वदुःखप्रणाशकं तेजःस्वरूपम् (देवस्य) कमनीयस्य (धीमहि) ध्यायेम (धियः) प्रज्ञाः (यः) (नः) अस्माकम् (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्।।

भावार्थ- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः कर्मोपासना ज्ञानविद्याः संगृह्याखिलैश्वर्ययुक्तेन परमात्मना सह स्वात्मनो युंजतेऽधर्माऽनैश्वर्यदुःखानि विधूय धर्मेश्वर्यसुखानि प्राप्नुवन्ति तानन्तर्यामिजगदीश्वरः स्वयं धर्मानुष्ठानमधर्मत्यागं च कारयितुं सदैवेच्छति।।

पदार्थ- हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासना काण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समसत ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का (धीमहि) ध्यान करें, वैसे तुम भी इसका ध्यान करो।

भावार्थ- इन मन्त्र में वाचकलुप्तोमालङ्कार है। जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म, अनैश्वर्य और दुःख रूप मलों को छुड़ा के धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उनको अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता (ते) है।।

इसका भाष्य Ralph T.H. Griffith ने इस प्रकार किया है-

"May we attain that excellent glory of Savitar the God. So may he stimulate our prayers."

यह भाष्य आध्यात्मिक है परन्तु विज्ञ पाठक स्वयं इसकी तुलना महर्षि दयानन्द के भाष्य से करके ग्रिफिथ के वैदुष्य का स्तर जान सकते हैं।

मेरा भाष्य

यह मन्त्र (व्याहृति रहित रूप में) यजु. ३.३५; २२.९; ३०.२; ऋ. ३.६२.१०; सामवेद १४६२ में भी विद्यमान है। यह ऐतरेय ब्राह्मण में भी अनेकत्र आया है। इनमें से यजुर्वेद ३०.२ में इस मन्त्र का ऋषि नारायण तथा अन्यत्र विश्वामित्र है। देवता सविता, छन्द निचृद् बृहती एवं स्वर षड्ज है। व्याहृतियों का छन्द दैवी बृहती तथा स्वर व्याहृतियों सहित सम्पूर्ण मन्त्र का मध्यम षड्ज है। महर्षि दयानन्द ने सर्वत्र ही इसका भाष्य आध्यात्मिक किया है। केवल यजुर्वेद ३०.२ के भावार्थ में अधिभौतिक का स्वल्प संकेत भी है; शेष आध्यात्मिक ही है। एक विद्वान् ने कभी हमें कहा था कि गायत्री मन्त्र जैसे कुछ मन्त्रों का आध्यात्मिक के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भाष्य हो ही नहीं सकता। हम संसार के सभी वेदज्ञों को घोषणापूर्वक कहना चाहते हैं कि वेद का प्रत्येक मन्त्र इस सम्पूर्ण सृष्टि में अनेकत्र vibrations के रूप में विद्यमान है। इन मन्त्रों की इस रूप में उत्पत्ति, पृथिव्यादि लोकों की उत्पत्ति से भी पूर्व में हो गयी थी। इस कारण प्रत्येक मन्त्र का आधिदैविक भाष्य अनिवार्यतः होता है। त्रिविध अर्थ प्रक्रिया में सर्वाधिक व सर्वप्रथम सम्भावना इसी प्रकार के अर्थ की होती है। इस कारण

इस मंत्र का आधिदैविक अर्थ नहीं हो सकता, ऐसा विचार करना वेद के यथार्थ स्वरूप से नितान्त अनभिज्ञता का परिचायक है।

मेरा आधिदैविक भाष्य

इस मंत्र का महर्षि दयानन्द द्वारा किया हुआ आध्यात्मिक भाष्य हमने ऊपर उद्धृत किया है। अब हम इसी मंत्र का आधिदैविक भाष्य करते हैं। इस ऋचा का देवता सविता है। सविता के विषय में ऋषियों का कथन है-

"सविता सर्वस्य प्रसविता" (नि.१०.३१)
"सविता वै देवानां प्रसविता" (श.१.१.२.१७)
"सविता वै प्रसवानामीशे" (ऐ.१.३०)
"प्रजापतिर्वै सविता" (तां.१६.५.१७)
"मनो वै सविता" (श.६.३.१.१३)
"विद्युदेव सविता" (गो.पू.१.३३)
"पशवो वै सविता" (श.३.२.३.११)
"प्राणो वै सविता" (ऐ.१.१९)
"वेदा एव सविता" (गो.पू.१.३३)
"सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः" (तै.ब्रा.२.५.७.४)

इससे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं-

- सविता नामक पदार्थ सबकी उत्पत्ति व प्रेरणा का स्रोत व साधन है।
- यह सभी प्रकाशित व कामना अर्थात् आकर्षणादि बलों से युक्त कणों का उत्पादक व प्रेरक है।
- यह सभी उत्पन्न पदाथों का नियन्त्रक है।
- 'ओम्' रश्मि रूप छन्द रश्मि एवं मनस्तत्व ही सविता है।
- विद्युत को भी 'सविता' कहते हैं।
- विभिन्न मरुद् रश्मियाँ एवं दृश्य कण 'सविता' कहलाते हैं।
- विभिन्न प्राण रश्मियाँ 'सविता' कहलाती हैं
- सभी छन्द रश्मियाँ भी 'सविता' हैं।
- तारों के केन्द्रीय भाग रूप राष्ट्र को प्रकाशित व उनका पालन करने वाला सम्पूर्ण तारा भी 'सविता' कहाता है।

यह हम पूर्व में लिख चुके हैं कि देवता किसी भी मंत्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। इस कारण इस मंत्र का मुख्य प्रतिपाद्य 'ओम्' छन्द रश्मि, मनस्तत्व, प्राण तत्व एवं सभी छन्द रश्मियाँ हैं। इस ऋचा की उत्पत्ति विश्वामित्रः ऋषि (वाग् वै विश्वामित्रः (कौ.ब्रा. १०.५), विश्वामित्र सर्वमित्रः (नि.२.२४)) अर्थात् सबको आकृष्ट करने में समर्थ 'ओम्' छन्द रश्मियों से होती है।

आधिदैविक भाष्य- (भूः) 'भूः' नामक छन्द रश्मि किंवा अप्रकाशित कण वा लोक, (भुवः) 'भुवः' नामक रश्मि किंवा आकाश तत्व (स्वः) 'सुवः' नामक रश्मि किंवा प्रकाशित कण, फोटोन वा सूर्यादि तारे आदि से युक्त। (तत्) उस अगोचर वा दूरस्थ सविता अर्थात् मन, 'ओम्' रश्मि, सभी छन्द रश्मियाँ, विद्युत सूर्यादि आदि पदार्थों को (वरेण्यम् भर्गः देवस्य) सर्वतः आच्छादित करने वाला व्यापक (भर्गः=अग्निर्वै भर्गः (श.१२.३.४.८), आदित्यो वै भर्गः (जै.उ.४.१२.२.२), वीर्यं वै भर्गऽएष विष्णुर्यज्ञः (श.५.४.५.१)), अयं वै (पृथिवी) लोको भर्गः (श.१२.३.४.७)) आग्नेय तेज, जो सम्पूर्ण पदार्थ को व्याप्त करके अनेक संयोजक व सम्पीडक बलों से युक्त हुआ प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों के निर्माण हेतु प्रेरित करने में समर्थ होता है, (धीमहि) प्राप्त होता है अर्थात् वह सम्पूर्ण पदार्थ उस आग्नेय तेज, बल आदि को व्यापक रूप से धारण करता है। (धियः यः नः प्रचोदयात्) जब वह उपर्युक्त आग्नेय तेज उस पदार्थ को व्याप्त कर लेता है, तब विश्वामित्र ऋषि संज्ञक मन व 'ओम्' रश्मि रूप पदार्थ (धीः=कर्मनाम (निघं.२.१), प्रज्ञानाम (निघं.३.९), वाग् वै धीः (ऐ.आ.१.१.४)) नाना प्रकार की वाग् रश्मियों को विविध दीप्तियों व क्रियाओं से युक्त करता हुआ अच्छी प्रकार प्रेरित व नियन्त्रित करने लगता है।

भावार्थ- मन एवं 'ओम्' रश्मियों से युक्त होकर क्रमशः सभी मरुद, छन्द आदि रश्मियों को अनुकूलता

से सक्रिय करते हुए सभी कण, क्वाण्टा एवं आकाश तत्व को उचित बल व नियन्त्रण से युक्त करती है। इससे सभी लोकों तथा अन्तरिक्ष में विद्यमान पदार्थ नियन्त्रित ऊर्जा से युक्त होकर अपनी-अपनी क्रियाएं समुचित रूपेण सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। इससे विद्युत बल भी सम्यक् नियंत्रित रहते हैं।

सृष्टि में इस ऋचा का प्रभाव- इस ऋचा की उत्पत्ति के पूर्व विश्वामित्र ऋषि अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मियाँ विशेष सक्रिय होती हैं। इसका छन्द दैवी बृहती निचृद् गायत्री होने से इसके छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित कण वा रश्मि आदि पदार्थ तीक्ष्ण तेज व बल प्राप्त करके सम्पीडित होने लगते हैं। इसके दैवत प्रभाव से मनस्तत्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मि रूप सूक्ष्मतम पदार्थों से लेकर विभिन्न प्राण, मरुत् छन्द रश्मियाँ, विद्युत के साथ-साथ सभी दृश्य कण वा क्वाण्टाज् प्रभावित अर्थात् सक्रिय होते हैं। इस प्रक्रिया में 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' नामक सूक्ष्म छन्द रश्मियाँ 'ओम्' छन्द रश्मि के द्वारा विशेष संगत व प्रेरित होती हुई कण, क्वाण्टा, आकाश तत्व तक को प्रभावित करती है। इससे इन सभी में बल एवं ऊर्जा की वृद्धि होकर सभी पदार्थ विशेष सक्रियता को प्राप्त होते हैं। इस समय होने वाली सभी क्रियाओं में जो-जो छन्द रश्मियाँ अपनी भूमिका निभाती हैं, वे सभी विशेष उत्तेजित होकर नाना कर्मों को समृद्ध करती हैं। विभिन्न लोक चाहे, वे तोर आदि प्रकाशित लोक हों अथवा पृथिव्यादि ग्रह वा उपग्रहादि अप्रकाशित लोक हों, सभी की रचना के समय यह छन्द रश्मि अपनी भूमिका निभाती है। इसके प्रभाव से सम्पूर्ण पदार्थ में विद्युत एवं ऊष्मा की वृद्धि होती है परन्तु इस स्थिति में भी यह छन्द रश्मि विभिन्न कणों वा क्वाण्टाज् को सक्रियता प्रदान करते हुए भी अनुकूलता से नियन्त्रित रखने में सहायक होती है। इस ग्रन्थ के खण्ड ४.३२, ५.५ एवं ५.१३ में पाठक इस ऋचा क्रा ऐसा प्रभाव देख सकते हैं। हाँ, वहाँ व्याहृतियों की अविद्यमानता अवश्य है। इसके षड्ज स्वर के प्रभाव से ये रश्मियाँ अन्य रश्मियों को आश्रय देने, नियन्त्रित करने, दबाने एवं वहन करने में सहायक होती है। व्याहृतियों का मध्यम स्वर इन्हें विभिन्न पदार्थों के मध्य प्रविष्ट होकर अपनी भूमिका निभाने का संकेत देता है। छन्द व स्वर के प्रभाव हेतु पूर्वोक्त छन्द प्रकरण को पढ़ना अनिवार्य है।

मेरा आधिभौतिक भाष्य

आधिदैविक भाष्य व वैज्ञानिक प्रभाव को दर्शाने के पश्चात् हम इस मंत्र के आधिभौतिक अर्थ पर विचार करते हैं- (भूः=कर्मविद्याम्, भुवः=उपासनाविद्याम्, स्वः=ज्ञानविद्याम् (म.द.य.भा.३६.३)। सविता= योग पदार्थज्ञानस्य प्रसविता (म.द.य.भा.११.३), सविता राष्ट्र राष्ट्रपतिः (तै.ब्रा.२.५.७.४)) कर्मविद्या, उपासनाविद्या एवं ज्ञानविद्या इन तीनों विद्याओं से सम्पन्न (सवितुः) (देवस्य) दिव्य गुणों से युक्त राजा, मात-पिता किंवा उपदेशक आचार्य अथवा योगी पुरुष के (वरेण्यम्) स्वीकरणीय श्रेष्ठ (भर्गः) पापादि दोषों को नष्ट करने वाले, समाज, राष्ट्र व विश्व में यज्ञ अर्थत् संगठन, त्याग, बलिदान के भावों को समृद्ध करने वाले उपदेश वा विधान को (धीमहि) हम सब मनुष्य धारण करें। (यः) ऐसे जो राजा, योगी, आचार्य वा माता-पिता और उनके विधान वा उपदेश (नः) हमारे (धियः) कर्म एवं बुद्धियों को (प्रचोदयात्) व्यक्तिगत, आध्यात्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय वा वैश्विक उन्नति के पथ पर अच्छी प्रकार प्रेरित करते हैं।

भावार्थ- उत्तम योगी व विज्ञानी माता-पिता, आचार्य एवं राजा अपनी सन्तान, शिष्य वा प्रजा को अपने श्रेष्ठ उपदेश एवं सर्वहितकारी विधान के द्वारा सभी प्रकार के दुःखों, पापों से मुक्त करके उत्तम मार्ग पर चलाते हैं। ऐसे माता-पिता, आचार्य एवं राजा के प्रति सन्तान, शिष्य व प्रजा अति श्रद्धा भाव रखें, जिससे सम्पूर्ण परिवार, राष्ट्र वा विश्व सर्वविध सुखी रह सके।

❑❑

न्यूजीलैण्ड की घटना : वैश्विक शांति के लिए खतरा

(डॉ. विवेक आर्य, दिल्ली, मो.-०८०७६६८५५१७)

न्यूज़ीलैण्ड से समाचार मिला कि एक श्वेत मूल व्यक्ति ने मस्जिद में घुसकर जुम्मे की नमाज के दिन दोपहर को गोलीबारी की जिसमें ४६ व्यक्ति मारे गए एवं अनेक घायल हुए हैं। इस व्यक्ति ने इस हमले को फेसबुक से लाइव दिखाया। इस व्यक्ति की सोशल मीडिया को पढ़ा जाये तो यह पिछले कई दिनों से मुस्लिम प्रवासी शरणार्थियों की यूरोप में बढ़ रही जनसंख्या से विक्षुब्ध था। हमले से पहले हमलावर ने ७४ पृष्ठों के पत्र में मुस्लिम शरणार्थी विरोधी बातें लिखी थी और उसे सोशल मीडिया में प्रकाशित मुझे मीडिया में देखने को मिली। न्यूज़ीलैण्ड की प्रधानमंत्री ने इसे उनके देश के इतिहास का सबसे काला दिन बताया। सोशल मीडिया में मुस्लिम समाज के लोग इस घटना की तीव्र भर्त्सना करते दिख रहे हैं। उनके वक्तव्य ऐसे हैं जैसे चिरकाल से पीड़ित किसी जाति विशेष के होते हैं, जो समाज से सहानुभूति बटोरने के लिए प्रयासरत हो। उनका उद्देश्य विश्व के प्रायः सभी बुद्धिजीवियों की सोच को प्रभावित करना प्रतीत हो रहा है। मगर एक विशेष पहलू पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। बहुत कम लोगों ने इस विषय पर विचार किया है कि एक सामान्य पृष्ठभूमि के श्वेत व्यक्ति ने ऐसा कठोर कदम क्यों उठाया? आखिर क्या कारण है जो उसकी सोच में ऐसी विकृतियाँ पनपी कि उसने हिंसा का मार्ग अपनाया। जिस मार्ग को अपनाने वाले का सभ्य समाज में कोई स्थान नहीं है। इसके मूल कारण को जानने के लिए हमें कुछ आँकड़ों को जानने की आवश्यकता है।

२००५ में समाजशास्त्री डॉ० पीटर हैमंड ने गहरे शोध के बाद इस्लाम धर्म के मानने वालों की दुनियाभर में प्रवृत्ति पर एक पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक है 'स्लेवरी, टेररिज्म एंड इस्लाम-द हिस्टोरिकल रूट्स एंड कंटेम्पररी थ्रैट'। इसके साथ 'द हज' के लेखक लियोन यूरिस ने भी इस विषय पर अपनी पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डाला है। जो तथ्य निकल कर आए हैं, वे न सिर्फ चौंकाने वाले हैं, बल्कि चिंताजनक भी हैं।

उपरोक्त शोध ग्रंथों के अनुसार जब तक मुसलमानों की जनसंख्या किसी देश-प्रदेश क्षेत्र में लगभग २ प्रतिशत के आसपास होती है, तब वे एकदम शांतिप्रिय, कानूनपसंद अल्पसंख्यक बन कर रहते हैं और किसी को विशेष शिकायत का मौका नहीं देते। जैसे अमरीका में वे (०.६ प्रतिशत) है, आस्ट्रेलिया में १.५, कनाडा में १.६, चीन में १.८, इटली में १.५ और नॉर्वे में मुसलमानों की संख्या १.८ प्रतिशत है। इसलिए यहाँ मुसलमानों से किसी को कोई परेशानी नहीं है। जब मुसलमानों की जनसंख्या २ से ५ प्रतिशत के बीच तक पहुँच जाती है, तब वे अन्य धर्मावलंबियों में अपना धर्मप्रचार शुरू कर देते हैं। जैसा कि डेनमार्क, जर्मनी, ब्रिटेन, स्पेन और थाईलैंड में जहाँ क्रमशः २, ३.७, २.७, ४ और ४.६ प्रतिशत मुसलमान हैं।

जब मुसलमानों की जनसंख्या किसी देश या क्षेत्र में ५ प्रतिशत से ऊपर हो जाती है, तब वे अपने अनुपात के हिसाब से अन्य धर्मावलंबियों पर दबाव बढ़ाने लगते हैं और अपना प्रभाव जमाने की कोशिश करने लगते हैं। उदाहरण के लिए वे सरकारों और शॉपिंग मॉल पर 'हलाल' का मांस रखने का दबाव बनाने लगते हैं, वे कहते हैं कि 'हलाल' का मांस न खाने से उनकी धार्मिक मान्यताएं प्रभावित होती हैं। इस कदम से कई पश्चिमी देशों में खाद्य वस्तुओं के बाजार में मुसलमानों की तगड़ी पैठ बन गई है। उन्होंने कई देशों के सुपरमार्कीट के मालिकों पर दबाव डालकर उनके यहाँ 'हलाल' का मांस रखने को बाध्य किया। दुकानदार भी धंधे को देखते हुए उनका कहा मान लेते हैं।

इस तरह अधिक जनसंख्या होने का फैक्टर यहाँ

से मजबूत होना शुरू हो जाता है, जिन देशों में ऐसा हो चुका है, वे फ्रांस, फिलीपींस, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, नीदरलैंड, त्रिनिदाद और टोबैगो हैं। इन देशों में मुसलमानों की संख्या क्रमशः ५ से ८ फीसदी तक है। इस स्थिति पर पहुँचकर मुसलमान उन देशों की सरकारों पर यह दबाव बनाने लगते हैं कि उन्हें उनके क्षेत्रों में शरीयत कानून (इस्लामिक कानून) के मुताबिक चलने दिया जाए। दरअसल, उनका अंतिम लक्ष्य तो यही है कि समूचा विश्व शरीयत कानून के हिसाब से चले।

जब मुस्लिम जनसंख्या किसी देश में १० प्रतिशत से अधिक हो जाती है, तब वे उस देश, प्रदेश, राज्य, क्षेत्र विशेष में कानून-व्यवस्था के लिए परेशानी पैदा करना शुरू कर देते हैं, शिकायतें करना शुरू कर देते हैं, उनकी 'परिस्थिति' का रोना लेकर बैठ जाते हैं, छोटी-छोटी बातों को सहिष्णुता से लेने की बजाय दंगे, तोड़-फोड़ आदि पर उतर आते हैं, चाहे वह फ्रांस के दंगे हों, डेनमार्क का कार्टून विवाद हो या फिर एम्सटर्डम में कारों का जलाना हो, हरेक विवाद को समझबूझ, बातचीत से खत्म करने की बजाय खामख्वाह और गहरा किया जाता है। ऐसा गुयाना (मुसलमान १० प्रतिशत) इसराईल (१६ प्रतिशत), केन्या (११ प्रतिशत), रूस (१५ प्रतिशत) में हो चुका है।

जब किसी क्षेत्र में मुसलमानों की संख्या २० प्रतिशत से ऊपर हो जाती है तब विभिन्न 'सैनिक शाखाएं' जेहाद के नारे लगाने लगती हैं, असहिष्णुता और धार्मिक हत्याओं का दौर शुरू हो जाता है, जैसा इथियोपिया (मुसलमान ३२.८ प्रतिशत) और भारत (मुसलमान २२ प्रतिशत) में अक्सर देखा जाता है। मुसलमानों की जनसंख्या के ४० प्रतिशत के स्तर से ऊपर पहुँच जाने पर बड़ी संख्या में सामूहिक हत्याएं, आतंकवादी कार्रवाइयाँ आदि चलने लगती हैं। जैसे बोस्निया (मुसलमान ४० प्रतिशत), चाड (मुसलमान ५४.२ प्रतिशत) और लेबनान (मुसलमान ५६ प्रतिशत) में देखा गया है। शोधकर्ता और लेखक डॉ० पीटर हैमंड बताते हैं कि जब किसी देश में मुसलमानों की जनसंख्या ६० प्रतिशत से ऊपर हो जाती है, तब अन्य धर्मावलंबियों का जातीय सफाया शुरू किया जाता है (उदाहरण भारत का कश्मीर), जबरिया मुस्लिम बनाना, अन्य धर्मों के धार्मिक स्थल तोड़ना, जजिया जैसा कोई अन्य कर वसूलना आदि किया जाता है। जैसे अल्बानिया (मुसलमान ७० प्रतिशत), कतर (मुसलमान ७८ प्रतिशत) व सूडान (मुसलमान ७५ प्रतिशत) में देखा गया है।

किसी देश में जब मुसलमान बाकी आबादी का ८० प्रतिशत हो जाते हैं, तो उस देश में सत्ता या शासन प्रायोजित जातीय सफाई की जाती है। अन्य धर्मों के अल्पसंख्यकों को उनके मूल नागरिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया जाता है। सभी प्रकार के हथकंडे अपनाकर जनसंख्या को १०० प्रतिशत तक ले जाने का लक्ष्य रख जाता है। जैसे बंगलादेश (मुसलमान ८३ प्रतिशत), मिस्र (मुसलमान ९० प्रतिशत), गाजापट्टी (मुसलमान ९८ प्रतिशत), ईरान (मुसलमान ९८ प्रतिशत), ईराक (मुसलमान ९७ प्रतिशत), जोर्डन (मुसलमान ९३ प्रतिशत), मोरक्को (मुसलमान ९८ प्रतिशत), पाकिस्तांन (मुसलमान ९७ प्रतिशत), सीरिया (मुसलमान ९० प्रतिशत) व संयुक्त अरब अमीरात (मुसलमान ९६ प्रतिशत) में देखा जा रहा है।

पिछले दो दशकों में यूरोप के प्रायः सभी देशों में मुस्लिम जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है। सीरिया, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, इराक, बांग्लादेश, अफ्रीका, एवं खाड़ी देशों से बड़ी संख्या में मुसलमानों ने अपने देश को छोड़कर यूरोप, कनाडा, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि में विस्थापन किया है। सीमाएं मिलने के कारण सबसे अधिक विस्थापन यूरोपियन देशों जैसे फ्रांस, जर्मनी आदि में हुआ है। अनेक शहरों में अनेक बस्तियाँ मुसलमानों की बस गई हैं। जहाँ पर दाढ़ी बढ़ाये और गोल टोपी लगाए युवा एवं बुर्का पहने औरतें सामान्य रूप से दिखती हैं। साथ ही साथ में कुछ ऐसे समाचार भी पढ़ने को मिल रहे हैं। जैसे

- २००४ में मेड्रिड ट्रेन विस्फोट जिसमें १९३ नागरिक मारे गये।
- २००५ में लंदन धमाकों में ५२ नागरिक मारे गए।
- २०१५ में पेरिस हमले में १३० नागरिक मारे गए।
- १४ जुलाई २०१६ को भीड़ पर एक आतंकी ने ट्रक

दौड़ा दिया जिसमें ८६ निर्दोष लोगों की जान गई।
- २०१६ में ब्रुसल्स हमले में ३२ नागरिक मारे गए।
- २०१७ में मेनचेस्टर हमले में २२ नागरिक मारे गए।

इसके अतिरिक्त चोरी, डकैती, लूटपाट, अपहरण, बलात्कार आदि कुल घटनाओं का ४०% मुस्लिम शरणार्थियों द्वारा किए अपराधों से सम्बंधित था। ध्यान देने योग्य बात है कि इन अपराधों को करने वाले इन घटनाओं को गैर-मुसलमानों के विरुद्ध जिहाद के रूप में समर्थन करते दिखे। ब्रिटेन में पाकिस्तानी मूल के कुछ इस्लामिक गिरोह श्वेत छोटी बच्चियों को वेश्यावृति के धंधे में धकेलते भी मिले। मुहम्मद के कार्टून को लेकर चार्ली हेब्दों की घटना से सारा विश्व सकते में आ गया था। यह छोटी सी सूची है। ऐसे अपराधों को देख, सुन और विश्लेषण करने से यूरोप में रहने वाली श्वेत आबादी की मानसिकता का प्रभावित होना कोई बड़ी बात नहीं है। जिन शरणार्थियों को उन्होंने शरण दी वही उनके देश में आकर अपराध करते हैं। ऐसा करने से उनकी सोच शरणार्थियों के प्रति नकारात्मक बनना कोई असंभव बात नहीं है। ऊपर से इन घटनाओं को अंजाम देने वाले और उनके समर्थक इसे इस्लामिक साम्राज्यवाद के प्रचार-प्रसार के लिए जायज ठहराते भी मिले। मेरे विचार से न्यूजीलैण्ड की घटना उसी नकारात्मक हो रही मानसिकता का ही परिणाम है। भविष्य में यही नकारात्मकता विश्व को तीसरे विश्वयुद्ध में संलिप्त कर ले तो उसका परिणाम बहुत बुरा होगा। इसे रोकने के लिए वैश्विक सतर पर बुद्धिजीवियों को गंभीरता से चिंतन और संवाद कर कुछ ठोस करने की तुरंत आवश्यकता है। यही मेरा मत है।

(पृष्ठ २ का शेष)

दोषाः।'- अर्थात् प्राणायाम से शरीर की धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं- शरीर स्वस्थ होता है। पर यह बात सामान्य स्वास्थ्य के विषय में है। किसी विशेष रोग का यहाँ उल्लेख नहीं।

आजकल नए योगाचार्य न केवल रोगों की निवृत्ति के लिए ही योग की प्रक्रियाओं को बतलाते हैं, अपितु विषय भोग की सामर्थ्य बढ़ाने के लिए भी योग का उपदेश देते हैं। इसीलिए आजकल योगियों के दर्शन धनवानों अथवा राजनीतिक महत्व के लोगों की कोठियों में ही प्रायः होते हैं। पर योग का यह रूप न ऋषि दयानन्द को मान्य है और न आर्य समाज को, न शास्त्र को। मैं कहना चाहता हूँ कि-

(१) योग शास्त्र तथा आयुर्वेद विज्ञान दोनों का क्षेत्र बिल्कुल अलग-अलग है। दोनों का लक्ष्य, विचार और कार्य पद्धति भिन्न है।

(२) यह ठीक है कि योग साधना के लिए शरीर स्वस्थ होना चाहिए। यह भी ठीक है कि प्राणायाम आदि की प्रक्रिया द्वारा शरीर के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह भी ठीक है कि मानसिक स्थिरता और शान्ति का स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव होता है। पर इन सब तथ्यों के होते हुए भी योग साधना आयुर्वेद का स्थान नहीं ले सकती। योग के साधक रोग निदान के सम्बन्ध में वैद्य या डॉक्टर का स्थान नहीं ले सकते। प्रयत्न करें भी तो वे असफल होंगे।

(३) आर्य समाज तथा ऋषि दयानन्द की दृष्टि से 'पातंजल योग शास्त्र' ही योग का प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

(४) विविध आसन योग के अंग नहीं व्यायाम की भिन्न-भिन्न पद्धतियों का एक भाग हैं। इनकी उपयोगिता उसी दृष्टि से जाँचनी चाहिए।

(५) योग का अर्थ ही चित्त वृत्तियों को निरोधावस्था में जाना है। इसी से योग सम्बन्धी विचार को मुख्यता देनी चाहिए। शारीरिक कमी के लिए तो प्रत्येक प्राणी को आयुर्वेद का आश्रय लेना ही पड़ता है।

यज्ञ, योग तथा वेद- ये तीन आर्य समाज के मुख्य श्रद्धा स्थल हैं। इनका विवेचन इसलिए आवश्यक है कि ये श्रद्धा-स्थल अन्ध-श्रद्धा स्थल न बन जायें। तर्क-संगत श्रद्धा-स्थल रहें। नहीं तो ऋषि दयानन्द का सनातन वैदिक धर्म परिष्कार सम्बन्धी सारा प्रयत्न निष्फल हो जायेगा।

(स्रोतः टंकारा आकर्षण-आध्यात्मिक अनुभव, पृष्ठ ६०-६२, १९९५ संस्करण, प्रस्तुति : भावेश मेरजा, भरुच)

भारत विभाजन के लिए जिम्मेदार अंग्रेज न थे, मुस्लिम लीग थी

(क्रष्णचन्द्र गर्ग, पंचकूला, दूर.-0172-4010679)

आम तौर पर अपने आपको राष्ट्रवादी कहने वाले हिन्दू भारत विभाजन के लिए अंग्रेजों को दोषी ठहराते हैं परन्तु सच्चाई यह है कि भारत विभाजन के लिए जिम्मेदार अंग्रेज नहीं, मुस्लिम लीग थी। मुस्लिम लीग भारत के मुसलमानों का एक राजनैतिक दल था। उस समय संयुक्त भारत में मुसलमानों का आबादी २४% के लगभग थी। मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्नाह ने महसूस किया कि भारत के स्वतंत्र होने पर प्रजातन्त्र में मुसलमान शासक नहीं बन सकते। इसलिए उन्हें सत्ता में अपने के लिए ऐसा देश चाहिए था जिसमें मुसलमान बहुसख्या में हों। इसलिए मुसिलिम लीग ने दो राष्ट्र का सिद्धान्त दिया- एक हिन्दू बहुसंख्यक देश और दूसरा मुस्लिम बहुसंख्यक देश। इस सम्बन्ध में जिन्नाह ने २३ मार्च १९४० को लाहौर में हुए मुस्लिम लीग के सम्मेलन में कहा था-

"It is extremely difficult to appreciate why our Hindu friends fail to understand the real nature of Islam and Hinduism. They are not religions in the strict sense of the word, but are, in fact, different and distinct social orders. It is a dream that the Hindus and Muslims can ever evolve a common nationality, and this misconception of one Indian nation has gone for beyond the limits and is thecause of most of our troubles, and will lead India to destruction, if we fail to revise our notions in time. The Hindus and the Muslims belong to two different religious philosphies, social customs and literature. They neither intermarry, nor interdine together, and indeed they belong to two different civilization which are based mainly on conflicting ideas and conceptions. Their aspects on life and of life are different. It is quite clear that Hindus and Musalmans derive their inspipration from different sources of history. They have different epics, their heroes are different, and they have different episodes. Very often the hero of one is a foe of the other, and likewise, their victories and defeats overlap. To yoke together two such nations under a single State, one as a numerical minority and the other as a majority, must lead to growing discontent and the final destruction of any fabric that may be so built up for the government of such a State."

अर्थात्- "हमारे हिन्दू मित्र इस्लाम और हिन्दुत्व की वास्तविकता को क्यों नहीं समझते, मुझे इस बात को समझना बेहद मुश्किल लगता है। असल में ये मजहब नहीं हैं, ये दोनों अलग-अलग सामाजिक व्यवस्थाएं हैं। यह एक स्वप्न है कि हिन्दु और मुसलमान कभी सांझी राष्ट्रीयता अपना सकते हैं। एक राष्ट्र की यह गलत धारणा सीमा पार तक खींची जा चुकी है, यही हमारी समस्याओं का कारण है। अगर हमने समय रहते अपनी मान्यताओं को न बदला तो यह धारणा भारत को तबाही की ओर ले जाएगी। हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग मजहबी विचारधाराओं, सामाजिक रीति रिवाजों और साहित्य से जुड़े हैं। ये आपस में न शादियाँ करते हैं और न ही इनका आपस का खान-पान का सम्बन्ध है। वास्तव में ये दो अलग-अलग सभ्यताओं से सम्बन्ध रखते हैं जो एक दूसरे की विरोधी हैं। उनके जीवन के लक्ष्य अलग अलग हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है

कि हिन्दू और मुसलमान अपनी प्रेरणा अलग-अलग इतिहास से लेते हैं। इनके महाकाव्य, इनके आदर्श पुरुष, इनकी कथा-कहानियाँ अलग-अलग हैं। आम तौर पर एक का महाबली दूसरे का शत्रु है, एक की जीत होती है तो दूसरे की हार होती है। ऐसी दो कौमों का एक राष्ट्र में बांधना जिनमें से एक अल्पसंख्यक है और दूसरी बहुसंख्यक है, असन्तोष को बढ़ावा देगा और अन्त में उस रचना का विनाश करेगा जो उस राष्ट्र की सरकार बनाने के लिए रचा गया था।"

ऐसे ही भाषण जिन्हा ने और कई अवसरों पर दिए थे।

वायसराय लार्ड विक्टर लिनलिथगो (१६३६-४४) और लार्ड अरचीबाल्ड बेवल (१६४४-४७) ने जिन्नाह को उसके मुँह पर कह दिया था कि वे भारत का विभाजन नहीं करेंगे। उनके बाद आए लार्ड लुईस माऊँटबैटन (मार्च १६४७-अगस्त १६४७) ने विभाजन सिर्फ तब स्वीकार किया जब मुस्लिम लीग ने पहले तो धमकी दी और फिर हिन्दुओं पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। जून १६४७ में गाँधी जी समेत कांग्रेस के नेताओं ने भी भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया। गान्धी जी की प्रतिज्ञा "भारत का विभाजन मेरी लाश पर होगा" भी थोथी निकली क्योंकि मुसिलम लीग ने भारत के विभाजन के बिना मानना नहीं था और गान्धी जी की भूख हड़ताल से मृत्यु हो जाती।

वास्तव में विभाजन की जड़े इस्लाम में निहित हैं। इस्लाम के अनुसार शासक मुसलमान ही हो सकते हैं। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद को राष्ट्रवादी मुसलमान कहना गलत था, वास्तव में उसका लक्ष्य सारे भारत को ही इस्लामी देश बनाना था। जिन्नाह समय के अनुसार प्रजातन्त्र के महत्व को समझता था।

१६ अगस्त १६४६ को मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्रवाई (Direct Action) की घोषणा कर दी और जिन्नाह ने ऐलान कर दिया "भारत का विभाजन होगा अथवा भारत का विनाश होगा" (We may have either divided India or destroyed India)। यह घोषणा पाकिस्ताने बनाने के लिए दबाव डालने के लिए थी। इसका गुप्त एजण्डा हिन्दुओं पर अत्याचार करने का था। बंगाल में मियां हसन शहीद सुहरावर्दी मुख्यमंत्री था। उसके संरक्षण में कलकत्ता और नोआवखली में हिन्दुओं पर मुसलमानों ने अथाह अत्याचार किए। मुस्लिम लीग के नाम पर हजारों मुसलमानों की विशाल सभा होती। भाषणों में हिन्दुओं पर अत्याचार करने की योजनाएं बनाई जातीं। सभा सम्पन्न होने पर हजारों मुसलमान भूखे भेड़ियों की तरह निहत्थे हिन्दओं पर टूट पड़ते। दस हजार से अधिक हिन्दू मारे गए, पन्द्रह हजार से अधिक जख्मी हुए, सैकड़ों मकान और दुकानें जलाई गईं।

हिन्दू जो भारत विभाजन के लिए अंग्रेजों को दोषी ठहराते हैं, वे सत्य से और मुसलमानों से डरते हैं। भारत विभाजन का दोष मुसलमानों की अपेक्षा अंग्रेजों पर, जो चले गए हैं, लगाना बहुत आसान है। मुसलमानों के साथ बर्तना बेहद कठिन काम है। जिन्नाह हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बन्ध में सत्य कहता था, परन्तु हिन्दुओं का दुर्भाग्य है कि हमारे हिन्दू नेता इस सत्य को स्वीकार न करते थे और आज भी नहीं करते।

नोट :-

भारत का विभाजन दो कारणों से बेहद दुःखदायक रहा-

(अ) विभाजन करने में समझदारी न दिखाई गई जिस कारण से कई निर्दोष लोग मारे गए।

(ब) मजहब के आधार पर बंटवारे के बावजूद बड़ी संख्या में मुसलमानों को भारत में रहने दिया गया।

❑❑

इतिहासकार की कलाकारी (10)

(राजेशार्य आट्टा, मो.- ०९६९६९१२६१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में बिल्कुल ठीक लिखा है कि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। अन्य बादशाहों की तरह औरंगजेब के भी अत्याचारों को छिपाने और उसे 'जिन्दा पीर' सिद्ध करने के लिए 'मध्यकालीन भारत' में लेखक प्रो. सतीशचन्द्र ने लिखा है- "१६८६ में उसने अपने लड़के मुअज्जम को अपराध में १२ वर्षों तक बन्दी बनाकर रखा था। उसके अन्य लड़कों को भी कई अवसरों पर उसके क्रोध का शिकार होना पड़ा।... वह अपनी कट्टरता तथा ईश्वर से डरने वाले सच्चे मुसलमान के रूप में जाना जाता है। कालान्तर में उसे "जिन्दा पीर" या सन्त के रूप में जाना जाने लगा।''

"औरंगजेब जब गुजरात का शासक था, उसने कई मंदिरों को ध्वस्त करने का हुक्म दिया लेकिन अधिकतर मामलों में इसका अर्थ केवल प्रतिमाओं को तोड़ना और मन्दिरों को बंद करना होता था।... १६६५ में इन मदिरों को नष्ट करने का हुक्म दिया। इनमें से सोमनाथ का मंदिर भी था।... ऐसा नहीं लगता कि बड़े पैमाने पर मंदिरों को तोड़ा गया हो।... बनारस में विश्वनाथ मंदिर तथा वीरसिंह देव द्वारा जहाँगीर के काल में मथुरा में निर्मित केशवराय जैसे प्रमुख मंदिरों को विध्वंस कर दिया गया और उनकी जगह मस्जिदों का निर्माण किया गया। इन मंदिरों को तोड़ने के पीछे राजनीतिक उद्देश्य भी थे। म-आसिर-ए-आलमगीरी के लेखक मुस्तइद खाँ ने मथुरा के केशवराय मंदिर के ध्वस्त किए जाने के बारे में लिखा है- सम्राट के विश्वास की शक्ति को देखकर गर्वीले राजा सभी निमूढ़ और मूर्तिवत् हो गए।

इसी संदर्भ में उड़ीसा में पिछले दस-बारह वर्षों में निर्मित मंदिरों को भी ध्वस्त कर दिया गया। लेकिन यह सोचना गलत होगा कि मंदिरों को तोड़ने के लिए कोई आम आदेश जारी किये गये थे। (१६७९-८० में लड़ाई के समय) उदयपुर तथा जोधपुर और उसके परगनों के अनेक मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया।) (पृ.३०२)

"यद्यपि हमें इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि जब औरंगजेब ने हिंदू मंदिरों और मठों को अनुदान दिया तथापि कुल मिलाकर हिंदू मंदिरों के संबंध में अपनाई गई नीति से हिंदुओं में व्यापक असंतोष स्वाभाविक था।" (पृ.३०३)

"यद्यपि औरंगजेब इस्लाम को प्रोत्साहन देना वैध समझता था, फिर भी हमें बड़े पैमाने पर हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन के लिए जोर देने के प्रमाण नहीं मिलते। न ही हिन्दू सरदारों के साथ भेदभाव बरता जाता था।..." (पृ.३०४)

समीक्षा- इस विस्तृत लेखन में लेखक ने औरंगजेब का वकील बनकर परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये हैं। इतिहासकार असगर अली इञ्जीनियर की तरह कभी कहा-मन्दिर नहीं मूर्तियाँ तोड़ी; कभी कहा- प्रसिद्ध मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनाई गईं; फिर कहा- मन्दिर तोड़ना धार्मिक नहीं राजनैतिक मामला था। फिर कहा औरंगजेब तो मठों को दान देता था।

तो क्या राजनैतिक उद्देश्य के लिए दूसरों के धार्मिक स्थल तोड़ना और उसके स्थान पर अपना धार्मिक स्थान बनाना गलत नहीं है? सैकड़ों मन्दिर तोड़ने वाला औरंगजेब अपने स्वार्थ में सहयोगी बने किसी मठ, मन्दिर को अनुदान देने से सहिष्णु नहीं कहला सकता। उसकी असहिष्णुता ने ही हिंदुओं में व्यापक असन्तोष उत्पन्न किया था। लेखक ने स्पष्ट नहीं लिखा कि उसका बड़ा बेटा मुहम्मद सुल्तान जेल में ही मर गया था, दूसरा शाहजादा मुअज्जम कई वर्ष जेल में रहा था; एक पुत्री जैबुन्निसा भी उसने जेल में डाल दी थी, जो वहीं

सड़कर मर गई; उसकी नीतियों के कारण ही एक बेटा अकबर विद्रोही हो गया और इधर उधर भटकता हुआ मर गया। फिर भी लेखक ने उसे सन्त और जिन्दा पीर लिख दिया।

मन्दिर तुड़वाने में कौन सी ईश्वर भक्ति थी जो लेखक ने मुस्तइद खाँ के वचन को बिना टिप्पणी किये लिख दिया? यदि मूर्ति में भगवान नहीं है, तो सातवें आसमान पर ही क्यों हैं? क्या उसे नीचे आने में डर लगता है? जब मुस्तइद खाँ का यह वाक्य मान लिया, फिर 'मध्यकालीन भारत' पुस्तक में पाद टिप्पणी में (संभवतः अनुवादकों द्वारा) लिखा उसका यह वचन (कथन) भी क्यों नहीं मान लिया कि औरंगजेब के इन (मन्दिर तोड़ने के) फरमानों का उद्देश्य इस्लाम की स्थापना थी और सम्राट ने प्रांतीय शासकों को सभी मंदिरों को नष्ट करने का हुक्म दिया था तथा अविश्वासी अर्थात् हिंदुओं द्वारा मनाए जाने वाले धार्मिक उत्सवों पर पाबंदी लगाने को कहा था।

यह बात औरंगजेब के निकट रहे व्यक्ति ने औरंगजेब के अंतिम वर्षों में लिखी है। 'औरंगजेबनामा' के प्रमाण पहले लिखे जा चुके हैं। कि उसने (औरंगजेब ने) मूर्तियों को तुड़वाकर मस्जिदों की सीढ़ियों में इसलिए लगवा दिया, ताकि वे जनसामान्य की ठोकरों में घूमती रहें। लेखक भोले विद्यार्थियों को बहका रहा है, जब 'औरंगजेबनामा' में ही यह लिखा हुआ है कि सम्राट का मानस धर्म (इस्लाम) को बढ़ाने एवं दुष्टों (हिन्दुओं) की बातों को घटाने का था इसलिए आदेश पारित हुआ (३ अप्रैल १६७९ ई.) कि इसी मा (माह) की प्रथम तारीख से हजूर और सूबों के जिम्मियों (विधर्मी-हिन्दुओं) से जजिया कर लिया जाये। इस कार्य हेतु कई ईमानदार मौलवी व मुल्ला नियुक्त किये गये। (पृ. १५६)

यह भी लिखा है- (१३ फरवरी १६९५) बादशाह की ओर से सूबों में यह आदेश भिजवाया गया कि राजपूतों के अलावा अन्य हिन्दू लोग हथियार न बाँधें तथा पालकी, अरबी और ईराकी घोड़ों पर सवारी न करें।" (पृ. १९८)

फिर लेखक किस आधार पर कहता है कि कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि औरंगजेब अपने इन (मन्दिर तोड़ना, जजिया लगाना आदि) कार्यों द्वारा दार-उल-हरब को दार-उल-इस्लाम अर्थात् मुसलमान देश में परिवर्तित कर देना चाहता था (३०४)। वास्तव में तो कुछ इतिहास लेखक (सेकुलर) उसके पापों पर पर्दा डालकर उसे टोपियाँ सीलकर गुजारा करने वाला पीर सिद्ध कर रहे हैं। ध्यान रहे, वह सड़क किनारे बैठकर टोपियां नहीं बेचता था, अपितु चाटुकार दरबारी हजारों रुपये की बोलियां लगाकर उनहें खरीदते थे। अपने 'गुजारे के लिए ही उसने सारे देश में लाखों की सेना रखी थी, जिसका खर्च मात्र टोपियाँ बेचने से सम्भव नहीं था। उसने अपने सहायकों (मारवाड़ के यशवन्त सिंह) की मृत्यु के बाद उनके राज्य भी हड़पे थे; मन्दिर भी लूमटे थे और जजिया भी लगाया था।

जजिया कर लगाने के कारण कहीं औरंगजेब की निन्दा न हो जाए, अतः लेखक ने लिखा- "यह हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए आर्थिक दबाव नहीं था, क्योंकि इस कर का बोझ काफी हल्का था।... यद्यपि बताया जाता है कि जजिया से काफी आमदनी थी।" (पृ.३०३)

समीक्षा- जब मुसलमान इस कर से मुक्त थे, तो यह सीधे तौर पर कर मुक्ति का आकर्षण (मुसलमान बनना) था। यदि इसका बोझ हल्का था, ते इसे हटाने के कारण अकबर की महानता का ढोल क्यों पीटा? फिर इससे काफी आमदनी कैसे होती थी? स्वाभिमानी हिन्दुओं के लिए इसे उगाहने वाली घृणित प्रथा से भारी कुछ हो ही नहीं सकता। डॉ. लाल ने लिखा है- "जजिया के भुगतान के समय जिमी (हिन्दू) का गला पकड़ा जाता और जोरों से हिलाया तथा झकझोरा जाता था, जिससे जिम्मी हो अपनी स्थिति का ज्ञान हो सके।"

स्वयं लेखक ने भी पृ. २१३ पर लिखा है- "१५६४ में उस (अकबर) ने जजिया हटा दिया, जिसका प्रयोग

कभी-कभी उलमा गैर मुसलमानों को नीचा दिखाने के लिए किया करते थे।"

मानसिंह के वंशज मिर्जा राजा जयसिंह ने देशद्रोह का कलंक अपने माथे पर लगाकर शिवाजी को बन्दी बनाया उसके किले छीने। अपनी चतुराई से शिवाजी आगरा किले से भाग निकला, तो औरंगजेब जयसिंह के बेटे रामसिंह से नाराज हो गया। दक्षिण से आगरा आता हुआ जयसिंह रास्ते (बुरहानपुर) में ही मर गया (१६६६ ई.)। संभवतः उसे विष दिया गया था। जोधपुर का जसवन्त सिंह जमरूद में मर गया, तो औरंगजेब ने उसके खजाने की खोज शुरू कर दी और सारे मारवाड़ में मुगल अधिकारी नियुक्त कर दिये। उसके बेटे अजीत सिंह को अधिकार से वंचित कर दिया। जब इन प्रमुख हिन्दू सरदारों के साथ यह व्यवहार होता था, तो दूसरों की क्या कहें? लेखक बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन के प्रमाण से मना करता है, तो इसका अर्थ है छोटे पैमाने पर धर्म परिवर्तन (हिन्दुओं को मुसलमान बनना) को स्वीकार करता है। और छोटा-बड़ा पैमाना मानने का आधार क्या होगा? जब इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों को मरवा दिया, तो निश्चित है यदि उन्होंने इस्लाम स्वीकार किया होता, तो उन्हें मारा नहीं जाता। जैसे जाटवीर गोकुला के पुत्र-पुत्री मुसलमान बनने पर जिन्दा रहे और गुरु गोविन्द सिंह के बेटे मुसलमान न बनने पर मार दिये गये। गुरु तेगबहादुर भी इसी कारण कत्ल कर दिये गये। जबकि लेखक ने सत्य पर पर्दा डालते हुए लिखा है-

"गुरुओं ने शान-शौकत से रहना आरम्भ कर दिया और अपनी सेना भी खड़ी कर ली थी।... इसके बावजूद औरंगजेब और सिक्ख गुरुओं में १६७५ तक कोई संघर्ष नहीं हुआ। इस वर्ष गुरु तेगबहादुर को उनके पाँच अनुयाइयों के साथ पकड़ लिया गया और दिल्ली लाकर मार डाला गया। इस घटना के कारण स्पष्ट नहीं है।" (पृ.३१०)

समीक्षा- मात्र एक पंक्ति पूर्व लेखक ने यह भी लिखा है- "सिक्ख गुरुओं के साथ जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में भी संघर्ष हुआ था"-। उसी संघर्ष के कारण गुरुओं ने यदि आत्म रक्षा के लिए सेना रखी हो तो क्या यह अपराध था? औरंगजेब ने भी अपने पूर्वजों की परम्परा को निभाया। लेखक ने उसका बचाव करते हुए इस संघर्ष के कारणों का अनुमान लगाया है कि गुरु तेग बहादुर ने पंजाब में अशान्ति फैला दी; उसके परिवार वालों ने उसके उत्तराधिकार को चुनौती दी और षड्यन्त्र रचा। यह भी कहा जाता है। कि औरंगजेब गुरु तेग बहादुर से इसलिए नाराज था क्योंकि उन्होंने कुछ मुसलमानों को सिक्ख बना लिया था और कश्मीर में प्रान्तीय शासक द्वारा (किये गये) धार्मिक अत्याचार का विरोध किया था।... हो सकता है कि गुरु तेग बहादुर ने इन वर्गों (किसानों और नीची जाति के दस्तकारों) की आर्थिक दयनीयता के विरोध में आवाज उठाई हो।... नए प्रशासक द्वारा धर्म के नाम पर बड़े पैमाने पर अत्याचार की कहानियों में अतिशयोक्ति लगती है।" (पृ. ३१०-११)

समीक्षा- 'जजिया लगाने, मन्दिर तोड़ने आदि के कारण सारे देश में औरंगजेब के विरुद्ध अशान्ति फैल रही थी। अतः राष्ट्रभक्त गुरु ने ऐसा किया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। उनके परिवार वालों ने उनके उत्तराधिकार को चुनौती दी हो, यह भी सम्भव है। जब सभी मुगल शासक अपने परिवार वालों (भाई-भतीजों) को मार काट कर गद्दी पर बैठते थे, तो उन्हें गुरुओं के उत्तराधिकार में दखल देने का क्या अधिकार था? जब औरंगजेब और उसके अधिकारी हिन्दुओं को मुसलमान बनाते थे, तो उन्हें दण्ड क्यों नहीं दिया गया? लेखक गुरु तेगबहादुर द्वारा आर्थिक अत्याचार का विरोध करना ही उनके वध का कारण बताता है जबकि सिक्ख परम्परा धार्मिक अत्याचार का भी मुख्य वर्णन करती है, जिसे लेखक अतिशयोक्ति पूर्ण कहानी लिख रहा है। और इसका कारण लिखा है कि पन्द्रहवी शताब्दी से ही कश्मीर की आबादी अधिकतर मुसलमानों की ही थी। चाहे कुछ भी हो, फिर भी वहाँ हिन्दू तो रहते ही थे और अत्याचार भी उन्हीं पर हुए। यद्यपि

१६४७ में कश्मीर के बहुत से हिन्दू मार दिये गये थे, फिर भी १६६० ई. में लगभग ५ लाख हिन्दू कश्मीर घाटी छोड़कर भारत के विभिन्न भागों में शरणार्थी हुए थे। यह अत्याचार तो स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र रहते हुए हो रहा है, फिर अतीत को अतिशयोक्ति कैसे मान लें?

सत्य तो प्रकट हो रहा है, लेखक अपराधी को बचाने का कुप्रयास कर रहा है। गुरु गोविन्द सिंह के पुत्रों के बलिदान के विषय में लेखक ने लिखा है- "इस हमले में गुरु के दोनों पुत्र बन्दी बना लिए गए और जब उन्होंने इस्लाम को स्वीकार करने से इनकार कर दिया तब सरहिन्द में उनका कत्ल कर दिया गया।... इस बात में सन्देह है कि वजीर खाँ ने औरंगजेब के कहने पर गुरु के बेटों का क़त्ल किया था। ऐसा लगता है कि औरंगजेब गुरु को पूरी तरह नष्ट करने का इच्छुक नहीं था।" (पृ.३११-१२)

समीक्षा- फिर यह मिथ्या प्रलाप क्यों किया जा रहा है कि औरंगजेब ने हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान नहीं बनाया? आठ-दस वर्ष के मासूम बच्चे दीवार में चिनकर मार दिये गये। उनके दुःख में माता (दादी) गुजरी देवी ने भी दम तोड़ दिया। यह हत्या औरंगजेब के संकेत के बिना वजीर खाँ अपनी मर्जी से नहीं कर सकता था। क्योंकि वे सामान्य बच्चे नहीं थे, वे उस पिता के पुत्र थे, जिसके साथ औरंगजेब की आमने-सामने टक्कर हो रही थी और जिनके दादा गुरु तेग बहादुर का औरंगजेब ने सिर कटवाया था। जब लेखक के अनुसार औरंगजेब लाहौर के प्रशासक को गुरु गोविन्द सिंह से सन्धि करने के लिए कह सकता है, तो बिना पूछे इतना बड़ा कदम उठाने पर नाराज भी तो हो सकता था, पर ऐसा नहीं हुआ। अतः इसमे कोई सन्देह नहीं कि यह कत्ल औरंगजेब के कहने पर ही हुआ और मुसलमान न बनने के कारण हुआ। जिसके पिता का कत्ल किया गया हो; जिसके चारों बेटे कुर्बान हो गये हों, जिसकी माँ इस गम में मर गई हो; जिसकी मुगलों से झड़पें हो रही हों, फिर औरंगजेब उसका और क्या नष्ट करेगा जो लेखक ने लिखा- ऐसा लगता है कि. ...? लेखक औरंगजेब का पता नहीं कौन सा नमक हलाल कर रहा है।

और इसी नमक हलाली में लिख दिया- "यद्यपि इस नीति (मेवाड़-मारवाड़ संघर्ष) से औरंगजेब की कट्टरता और जिद का पता चलता है तथापि जैसा कि आरोप लगाया जाता है, ऐसा नहीं लगता कि औरंगजेब हिन्दुओं का नाश देखना चाहता था क्योंकि १६६७ के बाद बड़ी संख्या में मराठों को मनसब दिये गये।" (पृ.३१५)

समीक्षा- मनसब तो अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए औरंगजेब ने जयसिंह, जसवन्तसिंह आदि को भी दिये थे। पर उनका अन्त कैसा हुआ, यह हमने देख लिया। जयसिंह को जहर देकर मरवा दिया, जबकि लेखक ने सफाई देते हुए लिखा- "औरंगजेब की नाराजगी के कारण जयसिंह की अकाल मृत्यु हो गई (१६६७)।" लेखक ने नाराजगी का कारण क्यों नहीं बताया? नाराजगी के कारण हुई मृत्यु हत्या ही तो है। लेखक इस सत्य को छिपा रहा है। जमरूद में जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार पाते ही औरंगजेब ने मारवाड़ अपने कब्जे में कर लिया था, जिसे दुर्गादास राठौड़ ने लम्बी लड़ाई करके जीता। यदि गुरु गोविन्द सिंह, शिवाजी, छत्रसाल, राणा राजसिंह, दुर्गादास, गोकुला जैसे वीर उसके विरुद्ध खड़े न होते तो औरंगजेब हिन्दुओं को अवश्य ही मिटा देता। कुछ स्वार्थी मराठों को मनसब देने में उसका स्वार्थ था। इससे औरंगजेब उदार नही हो गया, पर लेखक इस रेत की ढहती हुई दीवार को बचाने का कुप्रयास कर रहा है, जो स्वयं तो गिरेगी ही, उसे भी दबा देगी।

क्या ही अच्छा होता यदि सभी मुगल आदि शासक लेखक की कल्पना के अनुरूप होते। फिर तो पाकिस्तान बनने की नौबत भी नहीं आती। मैं लेखक के सकारात्मक दृष्टिकोण (केवल गुणों को ही देखना) की अवश्य प्रशंसा करता, यदि लेखक ने उसमें ईमानदारी बरती होती।

वीर शिवाजी का प्रसंग आते ही लेखक की दृष्टि बदल गई। यद्यपि लेखक मानता है कि उन दिनों षड्यन्त्र तथा धोखाधड़ी आम बात थी और इन्हीं का सहारा लेकर सभी मुस्लिम शासक भारत को पराधीन रख सके। फिर यदि शिवाजी ने भी उन्हीं का सहारा लेकर देश-धर्म के शत्रुओं से अपनी स्वतंत्रता छीनने का प्रयास किया, तो यहाँ वह अवगुण कैसे हो गई? लेखक ने किसी भी मुस्लिम शासक के विषय में कहीं भी यह नहीं लिखा कि उसने छल का प्रयोग किया, पर शिवाजी के विषय में यह लिखा है, तो लेखक की नीयत पर शक जाता है। देखिये-

"शिवाजी ने इस (जावली) पर धोखे से कब्जा किया था।" - "शिवाजी ने बीजापुर के साथ भी अपना संघर्ष फिर आरम्भ किया तथा रिश्वत देकर पन्हाला और सतारा को हासिल कर लिया।" (पृ.३१८, ३२१)

"उस (शिवाजी) ने अपने सौतेले भाई एकोजी के भी कई क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। यद्यपि शिवाजी ने हैंदव धर्मोद्धारक (हिंदू धर्म की सुरक्षा करने वाला) पद्वी ग्रहण की थी पर इसके बावजूद उसने इस क्षेत्र की हिन्दू आबादी को बड़ी निष्ठुरता से लूटा। जब वह इस बड़े खजाने के साथ वापस लौटा, तब उसने कुतुबशाह के साथ इसका बंटवारा करने से इन्कार कर दिया और इस तरह उससे अपने सम्बन्ध बिगाड़ लिए।" (पृ.३२२)

"सैनिक के वेतन के लिए अधिकतर पड़ोसी क्षेत्रों को लूटा जाता था।"... "१६६० में (शिवाजी द्वारा) रिश्वत देकर परन्दा भी हासिल कर लिया।" (पृ. ३२३, ३२४)

समीक्षा- प्रिय पाठकवृन्द! अब तो लेखक की सेकुलर मानसिकता का विषधर पिटारे से बाहर आ ही गया। हो सकता है कि लेखक ने जैसा लिखा है, शिवाजी ने वैसा ही किया हो, क्योंकि उसने कृष्ण और चाणक्य की नीति (अत्याचारी शत्रु को पराजित करने के लिए छल कपट अपनाने में संकोच नहीं करना चाहिए) का आश्रय लेकर चरम सीमा पर पहुँचे शक्तिशाली मुगल शासक की जड़ें खोदी थीं। यदि हिन्दू राज्य की स्थापना या राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए कुछ स्वार्थी हिन्दुओं को शिवाजी ने लूटा भी हो, तो कोई बुरा नहीं हैं क्योंकि हिन्दू या मुसलमान होने मात्र से ही कोई अच्छा या बुरा नहीं होता। देश को गुलामी के बेड़ियाँ पहनाने के लिए हिन्दुओं का खून बहाने वाले मानसिंह, जयसिंह आदि हिन्दू थे और आक्रमणकारी शत्रुओं का सामना कर वीरगति पाने वाले हसन खाँ मेवाती, हकीम खाँ सूरी, इब्राहीम गार्दी आदि देशभक्त मुसलमान थे।

शिवाजी पर हिन्दुओं को लूटने का आरोप लगाते समय लेखक भूल गया कि सभी मुस्लिम शासक इस्लाम के प्रचार-प्रसार हेतु काफिरों को काटने के लिए तलवार उठाते थे और फिर राज्य-प्राप्ति के लिए वही तलवार अपने सगे भाइयों व उनके सहयोगियों पर भी चलती थी। यहीं नहीं, अपितु राज्य-विस्तार के समय वह समान भाव से मुस्लिमों का भी खून बहाती थी। फिर वे इस्लाम के रक्षक बना दिये और शिवाजी निष्ठुर लुटेरा।

लेखक ने शिवाजी द्वारा सौतेले भाई एकोजी (व्यंकोजी) के क्षेत्रों पर कब्जा करना तो लिखा, पर यह क्यों नहीं लिखा कि शिवाजी अपने भाई से अपना पैतृक हिस्सा लेना चाहता था और व्यंकोजी को बीजापुर के मुस्लिम सुल्तान की पराधीनता छोड़कर अपना सहायक बनाना चाहता था। व्यंकोजी ने शिवाजी को उसका पैतृक हिस्सा न देकर कई राजाओं की सहायता ली और शिवाजी के सूबेदार पर असफल आक्रमण किया। लेखक ने यह भी नहीं लिखा कि बाद में दोनों भाइयों में मैत्रीपूर्ण समझौता हो गया और शिवाजी ने उसके लगभग सारे क्षेत्र वापस लौटा दिये।

लेखक ने यह भी नहीं लिखा कि न्याय की दृष्टि से शिवाजी ने अपने रक्त-संबंधियों के भी हाथ कटवा दिये थे। उनकी सेना में प्रधान नव सेनापति सिद्धी मिश्री था। अनेक निम्न जाति के लोग ऊँचे पदों पर थे। फारसी पत्र व्यवहार का प्रमुख मुंशी अल्लाह अहमद था। युद्धों में जाते हुए सैनिकों को रास्ते में आने वाली मस्जिदों, कब्रों के प्रति पूरी सम्मान दृष्टि रखने का

(शेष पृष्ठ २७ पर)

यह कैसे सूझा? यह कैसे बताऊँ? (1)

(राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, मो.-०९४१७९४७१३३)

'दयानन्द सन्देश' के एक सुशिक्षित पाठक ने अति दूर पूर्व से एक गम्भीर प्रश्न पूछा है। मन में आया कि 'दयानन्द सन्देश' के उस पाठक के प्रश्न का उत्तर 'दयानन्द सन्देश' के लिए ही लिखकर श्रीयुत दिनेश शास्त्री को देता जाऊँ।

बात यह है कि कुछ समय से मैं 'वेद प्रकाश' तथा 'परोपकारी' में महर्षि के अलभ्य पत्र व्यवहार पर गहन चिन्तन व खोज करके लेख दिये जा रहा हूँ। प्रश्नकर्त्ता का यह कहना एकदम ठीक है कि जो बातें आपने लिखी हैं, जो प्रश्न उठाये हैं व निष्कर्ष निकाले हैं- यह आपको कैसे सूझे?

उसे धन्यवाद देते हुए कहा गया कि जो कुछ लिखा गया है, जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वह सब कठोर सत्य हैं। उन्हें कोई झुठला नहीं सकता। मुझे ये बातें सूझी हैं तो श्रेय आर्य समाज के बड़ों को जाता है। मैं एक अनुभवहीन अनाड़ी ग्रामीण युवक था। ऋषि के जीवन व पत्रों पर मेरी खोज व चिन्तन का विशेष श्रेय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को प्राप्त है जिन्हें एक पं. चमूपति जी को छोड़कर किसी नामी विद्वान् ने कभी इतिहासकार के रूप में प्रस्तुत ही नहीं किया।

स्वामी वेदानन्द जी, श्री सिद्धान्ती जी तथा श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार के ऐसे विचारों का कारण कुछ और है। इस युग में इतिहास के क्षेत्र में मान्यता प्राप्त आर्यसमाजी व्यक्ति मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं जिसने स्वामी जी का एक महान इतिहासकार के रूप में कभी एक प्रकाण्ड इतिहासज्ञ के रूप में मूल्याङ्कन किया है। और भी कई आर्य महापुरुषों का मैं ऋणी हूँ।

मुझे इस सम्बंध में दो तीन घटनाओं की याद आ गई जिन्हें यहाँ देना आवश्यक है। इससे प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का यथार्थ उत्तर मिला जावेगा फिर जो कुछ ऋषि के पत्रों पर लिख रहा हूँ उस विषय में भी संक्षेप में लिखा जावेगा। **दयानन्द सन्देश** के पुराने पाठक जानते हैं कि कभी लाला दीपचन्द जी ने आयु विषयक एक शास्त्रार्थ करवाया था। उस शास्त्रार्थ को छपवाया भी गया। निर्णायक मण्डल के पास उसे निर्णय के लिये भेजा गया। निर्णायक मण्डल में सबसे छोटी आयु का निर्णायक मैं ही था। मुझे जब निर्णायक बनाया गकया तो मैं दंग रह गया। शरर जी जैसे कई सुयोग्य विद्वान् मेरे से अधिक योग्य व आयु में बड़े तब आर्य जगत् में थे फिर लाला दीपचन्द जी ने मुझे निर्णायक क्यों बनाया? मैं लाला जी से ऐसा पूछता भी अच्छा नहीं लगता था। एक दिन लालाजी ने स्वयं ही बता दिया कि श्री प्राचार्य प्रियव्रत जी, ठाकुर अमर सिंह जी, पं. शिवकुजार जी आदि कई विद्वानों ने एक स्वर से यह सुझाव दिया कि इस मण्डल में जिज्ञासु जी को अवश्य लिया जावे, वह बाल्यकाल से ही शास्त्रार्थों व शास्त्रार्थ साहित्य में विशेष रुचि लेते आ रहे हैं। ठाकुर अमर सिंह जी ने भी मुझे बताया बा कि हम सबने लाला दीपचन्द जी को आपके नाम का सुझाव दिया।

दूसरी एक घटना कुछ लोगों ने पढ़ रखी होगी कि रायकोट (पंजाब) समाज के उत्सव पर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने सब उपदेशकों द्वारा आर्यवीर उर्दू साप्ताहिक में मिर्ज़ाइयों के आर्यसमाज पर किये गये वार-प्रहार वाले एक लेख के उत्तर में मेरी लेखमाला की भूरि-भूरि प्रशंसा को सुनकर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने गद्‌गद होकर कहा कि यह तो मानना पड़ेगा कि आर्य समाज या ऋषि पर कोई प्रहार करेगा तो जिज्ञासु चुपकर के नहीं बैठेगा। वह लेखनी व वाणी से उसका प्रतिकार करेगा ही। श्री पं. ओ३म् प्रकाश जी वर्मा वहीं थे।

इसी विषय में एक तीसरी घटना का उल्लेख बहुत उपयोगी होगा। महर्षि की बलिदान शताब्दी पर १९८३ ई० में कई विद्वान् साहित्यकारों का सन्मान किया गया।

स्वामी सत्यप्रकाश एक-एक विद्वान् का नाम पुकारते जाते और वह विद्वान् ऊपर जाकर प्रशस्ति पत्र लेता जाता।

तब स्वामी सत्यप्रकाश जी ने अगले व्यक्ति का नाम बोलकर केवल ये शब्द कहे, अब पं. लेखराम की परम्परा के एक विद्वान् का सन्मान होगा।" नाम नहीं बोला। स्वामी जी के इतना बोलते ही वयोवृद्ध आचार्य प्रियव्रत जी बोले, "चलो जिज्ञासु जी"। करतल ध्वनि के साथ हॉल गूञ्ज उठा। कई एक ने कहा, "उठो! जिज्ञासु जी।"

ये तीन घटनायें प्रश्नकर्ता प्रेमी सज्जन द्वारा उठाये गये प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ है। मुझे शास्त्रार्थ महारथियों ने जो अतीत में आर्यसमाज का गौरव रहे यह सब कुछ सुझाया है।

महाराज फरीदकोट ऋषि भक्त था। ऋषि दर्शन का प्यासा था। यह घटना इतिहास के पृष्ठों पर न आई और न लाई गई। यह दोष किसका है? क्या मैक्समूलर मोनियर विलियम्ज़ इस तथ्य का प्रकाश करता? हमारे तथाकथित बाबू लोग रमाबाई और सर सैयद अहमद की तोता रटन लगा-लगा कर बूढ़े हो गये। मानो कि रमा बाई आर्य समाज की एक निर्माता थी।

सज्जनो! लगभग ४० वर्ष हो गये मैंने पुराने स्रोतों से सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि जब माता लाड कुंवर (पत्नी राव युधिष्ठिर सिंह जी रेवाड़ी) को जब आर्यसमाज रेवाड़ी की सर्वसम्मति से प्रधान चुना गया तो पूरे विश्व में कहीं भी महिलाओं को वोट देने का अधिकार नहीं था। इतिहासकारों ने इतिहास परिषद् में पढ़े गये मेरे शोध लेख को सर्वश्रेष्ठ, मौलिक व ठोस मानकर मुझे प्रथम पुरस्कार दिया। क्या आर्य समाज में किसी ने इस खोज पर हर्षोल्लास व्यक्त किया?

एक सरकार भक्त ने ऋषि का भक्त बनकर लिखा कि मैं आपके साथ राजस्थान में घूमना चाहता हूँ। यह बात कोई लुकी छिपी नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रकाशनाधीन ग्रन्थ में मैंने इसे Highlight मुखरित कर दिया है। यह अब तक किसी को क्यों न सूझा? और मुझे कैसे सूझ गया? इसका उत्तर मुझसे न पूछा जावे। गांधी, नेहरू और गोरों की माला जप कर ऋषि जीवन लिखने व छापने वालों से पूछा जावे। मैं तो भाई परमानन्द, पं. इन्द्र व वीर सावरकर की स्वदेशी शैली का इतिहास लखेक हूँ।

महर्षि ने हरिद्वार, प्रयाग, काशी आदि तीर्थों पर कुम्भ पर सहस्रो को ईसाई बनाने वाले पादरी नीलकण्ठ शास्त्री की बोलती बन्द कर दी। पंजाब से आर्यों ने उसे भगा दिया। यह सनातन धर्म नेता व विद्वान् पं. गंगा प्रसाद जी शास्त्री ने लिखा है। मेरे बार बार लिखने पर भी हिन्दू समाज को इस घटना के प्रचार से झकझोरा नहीं जाता। योग करते कराते, योग दर्शन पढ़ते-पढ़ाते देश भर के बाबे शादियाँ कर लेते हैं। ऐसे योग शिविरों का क्या लाभ? हमारी खोज यदि आर्य समाज को अनुप्रमाणित नहीं कर सकती तो इसका यही अर्थ है कि इनके लिए श्मशान की शान्ति का नाम ही योग है। (क्रमशः)

❑❑

(पृष्ठ २५ का शेष)

आदेश था। उन्होंने मुस्लिम संत याकूत को कलसी में भूमि तथा धन दिया था। सभी महिलाओं को पूरा आदर दिया जाता था। कल्याण के किलेदार की पुत्रवधू गौहर बानू को शिवाजी ने जिस सम्मान के साथ वापस भेजा था, पूरे मुस्लिम काल में एक भी बादशाह ने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। फिर भी लेखक ने उनके हर अत्याचार पर सफाई दी है। ऐसे ही लोगों के विषय में कभी श्री भानुप्रताप शुक्ल ने लिखा था- "इतिहासकार की दृष्टि ऐसी होनी चाहिए कि वह अतीत के साथ ही नहीं, वर्तमान और भविष्य के साथ भी न्याय कर सके। यदि इतिहासकार देशभक्त शून्य, गौरवहीन, निहित-स्वार्थ, विदेशी परिवेशों एवं आयातित वैचारिक दबावों से प्रभावित हो, तो वह दुनिया के किसी भी अत्याचारी की तलवार से अधिक खतरनाक अपनी कलम से वर्तमान और भावी पीढ़ी की मानसिक हत्या सकता है।" (दैनिक जागरण)

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/४/२०१९
भार- ४० ग्राम

अप्रैल 2019

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा0 ....
जिला ....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।